आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-21/2012-14
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 जनवरी, 2014
वर्ष : 72 ★ अंक : 01 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 जनवरी, 2014 ★ पौष, 2070

ISSN 2249-2011

हिन्दी मासिक

जिनवाणी

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा कल्याणी।
द्रोह-मोह-छल-मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी'॥

जय गुरु हीरा जय गुरु हस्ती जय गुरु मान

नीति और ईमानदारी से प्राप्त धन समाज में प्रतिष्ठा दिलाता है।
- आचार्य श्री हीरा

U TURN
अहिंसा तीर्थ अभियान
मानवीय आहार शाकाहार

बीमारियों को निमंत्रण मांसाहार से

हृदय रोग, किडनी, माइग्रेन तथा अनेकों दोष मानसिक बीमारियों के मुख्य कारणों में से एक है मनुष्य का मांसाहारी होना

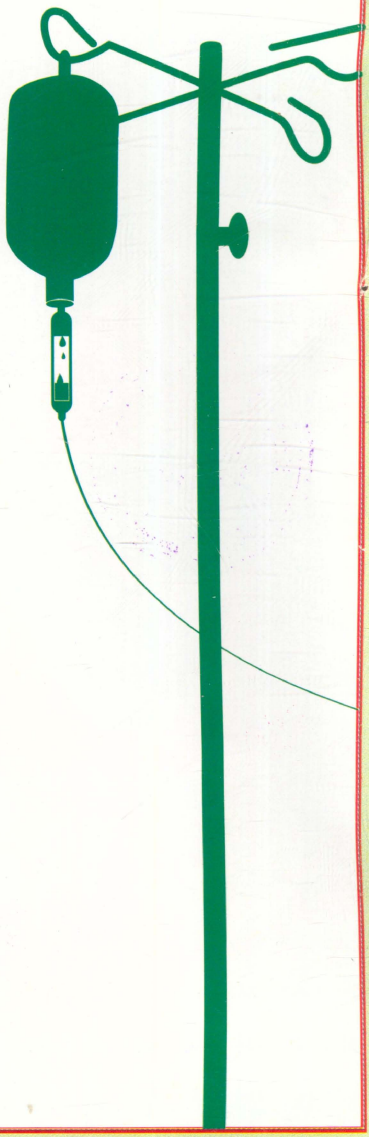

शाकाहार अपनाओ,
संसार में सुख-शांति बरसाओ
रतनलाल सी. बाफना
शाकाहार प्रचारक

रतनलाल सी. बाफना ज्वेलर्स
जलगाव • औरंगाबाद • नासिक

जनहितार्थ प्रकाशित

Jai Guru Heera Jai Guru Hasti Jai Guru Maan

।। जैनं जयति शासनम् ।।

दान से पुण्य होता है, पर संयम से कर्मों की निर्जरा होती है ।
दान हृदय की सरलता है, पर संयम हृदय की शुद्धता है ।।

DP Exports is leading Indian firm specializing in import, export and manufacture of diamonds and jewellery. We offer a wide range of rough diamonds, along with a specialization in the field of manufacturing polished diamonds and jewellery.

timeless jewels
unmatched quality
flawless craftsmanship

Dharamchand Paraschand Exports

1301, Panchratna, Opera House, Mumbai - 400 004. India.
t: +91 22 2363 0320 / +91 22 4018 5000
f: +91 22 2363 1982 email : dpe90@hotmail.com

।। महावीराय नमः ।।

जय गुरु हस्ती

जय गुरु हीरा जय गुरु मान

जिस दिन श्रद्धा जग जायेगी, अनमोल-दुर्लभ परम अंग रूप मानव जीवन को समर्पण करते देर नहीं लगेगी। श्रद्धा है तो प्राण अर्पण भारी नहीं लगेगा।

-आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments From :

S. .D. GEMS & SURBHI DIAMONDS

Prakash Chand Daga

Virendra Kumar Daga (Sonu Daga)

202, Ratna Deep, Behind Panchratna, 78- J.S.S. Road, Mumbai- 400 004
Ph. : (O) 022-23684091, 23666799 (R) 022-28724429
Fax : 022-40042015 Mobile : 098200-30872
E-mail : sdgems@hotmail.com

Jai Guru Heera Jai Guru Hasti Jai Guru Maan

व्यसनी से उसी प्रकार बचना चाहिये, जिस प्रकार छूत के रोगी से बचा जाता है।

- आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments from :

Basant Jain & Associates, Chartered Accountants
BKJ & Associates, Chartered Accountants
BKJ Consulting Private Limited
Megha Properties Private Limited
Ambition Properties Private Limited

601, Dalamal Chambers, New Marine Lines, Mumbai-400020

बसंत के. जैन

अध्यक्ष : श्री जैन रत्न युवक परिषद, मुम्बई
ट्रस्टी : गजेन्द्र निधि ट्रस्ट

Tel. : (O) 22018793, 22018794 (R) 28810702

जिनवाणी हिन्दी-मासिक

卐 संरक्षक
अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राज.), फोन-2636763

卐 संस्थापक
श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

卐 प्रकाशक
विनयचन्द डागा, मंत्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर-302003(राज.)
फोन-0141-2575997, फैक्स-0141-2570753

卐 प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन
सामायिक-स्वाध्याय भवन, प्लॉट नं. 2,
नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन : 0291-2626279
E-mail : jinvani@yahoo.co.in
Website: www.jinvani.net

卐 सह-सम्पादक
नौरतन मेहता, जोधपुर
डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर

卐 भारत सरकार द्वारा प्रदत्त
रजिस्ट्रेशन नं. 3653/57
डाक पंजीयन सं.-RJ/JPC/M-21/2012-14
ISSN 2249-2011

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

एवं माणुस्सगा कामा,
देवकामाण अन्तिए।
सहस्सगुणिया भुज्जो,
आउं कामा व दिव्विया।।
-उत्तराध्ययन सूत्र, 7.12

है तुच्छ कामसुख मनुजों का,
ऐसे ही सुरसुख के आगे।
देवों के भोग और आयुष्य,
नर से हजार गुने हैं आगे।।

जनवरी, 2014
वीर निर्वाण संवत्, 2540
पौष, 2070

वर्ष 72 अंक 1

सदस्यता शुल्क

त्रिवार्षिक : 250 रु.	स्तम्भ सदस्यता : 21000/-
आजीवन देश में : 1000 रु.	संरक्षक सदस्यता : 11000/-
आजीवन विदेश में : 12500 रु.	साहित्य आजीवन सदस्यता- 4000/-

एक प्रति का मूल्य : 10 रु.

शुल्क भेजने का पता- जिनवाणी, दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-03 (राज.)
फोन नं.0141-2575997, 2571163, फैक्स : 0141-2570753, E-mail:sgpmandal@yahoo.in
ड्राफ्ट 'जिनवाणी' जयपुर के नाम बनवाकर उपर्युक्त पते पर प्रेषित किया जा सकता है।

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर, फोन- 0141-2562929

नोट- यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो।

विषयानुक्रम

सम्पादकीय-	अभ्युदय एवं निःश्रेयस	-डॉ. धर्मचन्द जैन	7
अमृत-चिन्तन-	आगम-वाणी	-संकलित	11
	वाग्वैभव(21)	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी	13
प्रवचन-	असत्य का स्वरूप और उसकी भयानकता	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी	14
	धर्म का प्रथम चरण : अहिंसा एवं दया	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी	19
प्रेरक-प्रसंग -	आत्मा का साथी-ज्ञान	-आचार्यश्री आनन्दऋषि जी	29
शोधालेख -	जैन प्राकृत साहित्य : एक सर्वेक्षण (2)	-प्रो. सागरमल जैन	31
	पंच समवाय सिद्धान्त : एक समीक्षा(5)	-डॉ. श्वेता जैन	42
	केवलज्ञान के लिए प्रयुक्त विशेषण	-श्री पवनकुमार जैन	47
प्रासंगिक -	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में धर्म-विषयक चिन्तन	-श्री देवर्षि कलानाथ शास्त्री	39
संगोष्ठी-आलेख -	आचार्य हस्ती विरचित काव्य पदों में आध्यात्मिकता	-श्री सम्पतराज चौधरी	56
तत्त्वबोध -	जिज्ञासा-समाधान	-संकलित	65
नववर्ष विशेष-	नव वर्ष में अपनाएँ प्रेरक नव संकल्प	-श्री नितेश नागोता जैन	73
परिवार-स्तम्भ -	कैसे बचें टूटते रिश्ते?	-श्री पारसमल चण्डालिया	78
युवा-स्तम्भ -	वचनों को सम्भालो (2)	-श्री पारसमल संकलेचा	86
स्वास्थ्य-विज्ञान -	स्वास्थ्य का अमूल्य स्रोत : मानव-मूत्र	-डॉ. चंचलमल चोरडिया	91
बाल-स्तम्भ -	समय का महत्त्व	-साध्वी-युगल निधि-कृपा जी	101
अभिव्यक्ति -	वीतराग ध्यान-साधना-शिविर के अनुभव	-एक मुमुक्षु	105
	जीवन की सच्ची आराधना	-श्रीमती सुनीता डागा	106
प्रासंगिक-	मांस-निर्यात पर प्रतिबंध क्यों आवश्यक?	-डॉ. एन.के.खींचा	89
कविता/गीत-	चरणों में तेरे रहकर भगवन्	-मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनिजी	30
	पहनावे का अंतर	-श्री गणेशमुनि शास्त्री	68
	जिनवाणी कृपा से, है धर्म का उजाला	-श्री मोहन कोठारी 'विनर'	104
	यह वर्ष कुछ खास हो	-श्री राजेन्द्र जैन 'राजा'	107
	जीवन-बोध क्षणिकाएँ	-श्री यशवन्तमुनिजी	108
	मेरे गुरुवर हीरा हो तुम	-श्री योगेशबाबू जैन	111
विचार-	मुक्त आत्माओं के प्रकार	-श्री जशकरण डागा	18
	श्रुतज्ञान का जल	-आचार्यश्री हस्तीमल जी	28
	विरोधी भी बनते हैं मित्र	-महात्मा गाँधी	41
	प्रदर्शन छोड़ें, स्वयं को सुधारें	-श्री राजेन्द्रसिंह चौधरी	129
	Nice Words	*-Ms. Minakshi Jain*	88
साहित्य-समीक्षा-	नूतन साहित्य	-डॉ. श्वेता जैन	109
समाचार विविधा-	समाचार-संकलन	-संकलित	112
	साभार-प्राप्ति-स्वीकार	-संकलित	127

सम्पादकीय

अभ्युदय एवं निःश्रेयस

❖ डॉ. धर्मचन्द जैन

प्रत्येक मनुष्य अपना अभ्युदय चाहता है। अभ्युदय का तात्पर्य है विकास अथवा उन्नति। अनादि काल से ही मनुष्य में अभ्युदय की इच्छा दृष्टिगोचर होती है। यह मनुष्य की एक स्वाभाविक इच्छा है। मनुष्य चाहता है कि उसका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहे, मानसिक विकास हो एवं बौद्धिक प्रगति हो। वह चाहता है कि उसके पास पर्याप्त धन हो, सुख-सुविधा के साधन हों, समय पर पदोन्नति हो, उद्योग-व्यापार में अभिवृद्धि हो,नौकर-चाकर हों तथा सब ओर उसकी यश-कीर्ति व्याप्त हो। प्रगति की यह निरन्तरता अभ्युदय का एक लौकिक रूप है। एवंविध एक लौकिक अभ्युदय के होने पर दूसरे लौकिक अभ्युदय की कामना उत्पन्न हो जाती है तथा अभ्युदय की निरन्तरता में व्यक्ति सुख का अनुभव करता है।

धर्म को भी अभ्युदय का साधन माना गया है। कणाद के वैशेषिक सूत्र में धर्म का लक्षण देते हुए कहा गया है- *यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः*। अर्थात् जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि होती है वह धर्म है। निःश्रेयस का तात्पर्य है- जिससे बढ़कर कोई श्रेयस्कर न हो (*नितरां श्रेयसम् निः श्रेयसम्*।) अर्थात् परमकल्याण ही निःश्रेयस है जो मोक्ष या निर्वाण का भी वाचक है। तात्पर्य यह है कि जिससे इहलोक में अभ्युदय होता है तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है वह धर्म है। यहाँ पर विचारणीय विषय यह है कि मनुष्य निःश्रेयस के प्रति उतना आकृष्ट नहीं है, जितना अभ्युदय के प्रति। वह तात्कालिक उन्नति का पक्षधर है, किन्तु शाश्वत दुःख-मुक्ति के प्रति उसके मन में उतनी रुचि नहीं है।

प्रायः संसार में रहते हुए पद, पैसा, प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति को अभ्युदय माना जाता है, किन्तु वास्तविक अभ्युदय मनुष्य की दृष्टि का सम्यक् होना है। इस अभ्युदय के पश्चात् वह निःश्रेयस की ओर निश्चित रूप से गमन करता है। वैशेषिक सूत्र की चन्द्रानन्दवृत्ति में अभ्युदय का अर्थ इस प्रकार किया गया है- *अभ्युदय ब्रह्मादिलोकेष्विष्टशरीरप्राप्तिरनर्थोपरमश्च*। अर्थात् ब्रह्मादिलोक में अभीष्ट शरीर की प्राप्ति होना एवं अनर्थ (पाप) से विराम होना अभ्युदय है। यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि मनुष्य का आत्मिक विकास ही अभ्युदय का सूचक है। बाह्य योगक्षेम को अभ्युदय समझना पारमार्थिक दृष्टि से भ्रांति है। व्यावहारिक रूप में उसे अभ्युदय मान लिया जाता है। इस प्रकार अभ्युदय वह है जिससे मनुष्य अपनी दृष्टि को तो निर्मल बनाता ही है, आत्मिक विकारों पर विजय के मार्ग में भी आगे बढ़ता है। इस अभ्युदय कों हम जैन शब्दावली में पुण्य का प्रबल उदय कह सकते हैं। पुण्य के कारण ही एकेन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय बनता है, द्वीन्द्रिय जीव त्रीन्द्रिय बनता है, त्रीन्द्रिय जीव

चतुरिन्द्रय बनता है एवं चतुरिन्द्रिय जीव पंचेन्द्रिय बनता है। यह जीव का निरन्तर अभ्युदय है। अभ्युदय के कारण ही मनुष्य शरीर की प्राप्ति होती है, जीव स्वर्ग आदि में गमन करता है, उसे सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होती है। मनुष्य का जितना आत्मिक विकास होता है उतना ही उसका अभ्युदय होता जाता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक स्वस्थता का होना भी अभ्युदय ही कहा जाएगा। ऐसा अभ्युदय निःश्रेयस में सहायक हो सकता है, किन्तु रूप, बल, पद, वित्त, प्रतिष्ठा आदि लौकिक अभ्युदय में जो आसक्त हो जाता है, मद करने लगता है, उसके निःश्रेयस का पथ अवरुद्ध हो जाता है।

उपनिषद् वाङ्मय में अमृतत्व की प्राप्ति का प्रतिपादन है। यह अमृतत्व मोक्ष का ही सूचक है। क्योंकि उसे प्राप्त होने के पश्चात् जन्म-मरण की परम्परा समाप्त हो जाती है। वहाँ सकाम कर्म की अपेक्षा निष्काम कर्म को महत्त्व दिया गया है। फल की इच्छा से कार्य करना सकाम कर्म है तथा फल की अनासक्ति से कार्य करना निष्काम कर्म है। वेद में यद्यपि सकाम कर्म का भी प्रतिपादन है। उदाहरण के लिए वहाँ परिवार, कृषि, पशु सम्पदा एवं विविध प्रकार की धन-सम्पदा हेतु वेद मंत्रों में प्रार्थना की गई है। ब्राह्मण ग्रंथों में उन वेद मंत्रों की व्याख्या करने के साथ यज्ञ का जो विधान किया गया है वह विभिन्न प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करते हुए आध्यात्मिक उन्नति को भी प्रशस्त करता है। भिन्न-भिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञ हैं, यथा- स्वर्ग की प्राप्ति के लिए अग्निहोत्र यज्ञ, पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ आदि। वेदों एवं ब्राह्मण ग्रंथों से उपनिषदों का प्रतिपाद्य कुछ भिन्न है। उपनिषदों में सकाम कर्म को हीन कोटि में रखा गया है तथा निष्काम कर्मयोग को महत्त्व दिया गया है। जैन एवं बौद्ध परम्परा में भी निष्काम कर्मयोग पर बल है। अर्थात् जो भी कार्य करें, उसे अनासक्त भाव से किया जाना चाहिए।

जैन परम्परा में जो अणुव्रतों एवं महाव्रतों का विधान है, वह अभ्युदय एवं निःश्रेयस का मार्ग है। इनसे कर्म के आस्रव का निरोध होता है तथा संचित कर्मों की निर्जरा होती है। दूसरे शब्दों में साधना का समस्त मार्ग अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग है। उपनिषद् एवं श्रमण परम्परा के दर्शन इस बिन्दु पर एक मत दिखाई देते हैं कि प्रेय (प्रिय लगने वाले) की अपेक्षा श्रेय (कल्याणकर, हितकर) वरणीय है। कठोपनिषद् (1.2.2) में कहा गया है-

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

अर्थात् मनुष्य के समक्ष श्रेय भी आता है एवं प्रेय भी आता है। धीर पुरुष इनमें भलीभांति भेद समझता है तथा प्रेय की अपेक्षा श्रेय का वरण कर लेता है। किन्तु मंद बुद्धि व्यक्ति योगक्षेम के कारण प्रेय का वरण करता है। इसका तात्पर्य है कि योगक्षेम को भी प्रेय के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। अप्राप्त की प्राप्ति योग तथा प्राप्त की संरक्षा क्षेम कहलाता है। जो पद, पैसा

प्रतिष्ठा अथवा भोग योग्य सामग्री प्राप्त नहीं थी, उसका प्राप्त हो जाना योग है एवं उसके प्राप्त होने पर बने रहना क्षेम है। योगक्षेम की चाह प्रत्येक संसारी मनुष्य को होती है, किन्तु निःश्रेयस स्वरूप मुक्ति का वरण करने वाले के लिए योगक्षेम की चाह भी एक अटकाव है। इसलिए भगवद्गीता (2. 45) में भी कहा है-

त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को निर्योगक्षेम एवं आत्मवान् होने की प्रेरणा की गई है। जो योगक्षेम की इच्छा का त्याग कर देता है, वह निर्योगक्षेम कहलाता है तथा ऐसा व्यक्ति ही आत्मवान् हो सकता है। यहाँ पर उपनिषद् और वेद की विषयवस्तु के भेद का भी स्पष्ट प्रतिपादन हुआ है। वेद जहाँ सत्त्व, रज, एवं तमोगुण को विषय करते हैं वहाँ उपनिषद् (गीता) इन गुणों की इच्छा से रहित होने की प्रेरणा करती है- **निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन!** जो त्रिगुणों से युक्त रहेगा एवं उनमें आसक्त रहेगा वह अपने को जड़ प्रकृति से पृथक् अनुभव नहीं कर सकेगा। इसलिए आत्मवान् बनना ही श्रेयस्कर है। आत्मवान् ही श्रेय का वरण करता है। जो श्रेय का वरण करता है उसका कल्याण होता है।

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः तयोः श्रेय आदृदानस्य साधु, भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।। -कठोपनिषद् 1.2.1

अर्थात् श्रेय एवं प्रेय का भेद जानना आवश्यक है। ये दोनों पुरुष को आकृष्ट करते हैं, किन्तु जो श्रेय को ग्रहण करता है उसका भला होता है तथा जो प्रेय का वरण करता है उसकी हानि होती है।

जैनागम उत्तराध्ययन सूत्र में प्रेय पदार्थों एवं लौकिक अभ्युदय की वांछा से दूर करते हुए उत्तराध्ययनसूत्र (14.39) में कहा गया है-

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे।
सव्वं पि ते अपज्जतं नेव ताणाय तं तव।।

यदि सारा जग भी तुम्हारा हो जाए अथवा सारा धन भी तुम्हारा हो जाय, तो भी वह सारा तुम्हारे लिए अपर्याप्त है, वह तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। आज व्यक्ति समस्त संसार के धन-धान्य का स्वामी बनना चाहता है जो उत्तराध्ययन की दृष्टि में तृप्ति का साधन नहीं है। जैनागम में इस प्रकार के वाक्य अनेकत्र बिखरे पड़े है। बौद्धदर्शन में भी तृष्णा के क्षय से निर्वाण की प्राप्ति स्वीकार की गई है। वहाँ इन समस्त भोगों को अनित्य, अनात्म एवं दुःख रूप प्रतिपादित किया गया है। योगसूत्र में भी भोगों की ओर उन्मुख क्लिष्ट चित्तवृत्तियों के निरोध का प्रतिपादन है। कठोपनिषद् में नचिकता के मुख से पुत्र-पौत्र, धन्य-धान्य, हाथी-घोड़े को श्वोभाव (नश्वर) कहकर उपेक्षित किया गया है (कठोपनिषद् 1.1.26)

संसार में कितना भी जी लिया जाए, वह अल्प ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार संसार में कितना भी धन जुटा लिया जाए, वह सन्तुष्ट नहीं कर पाता। इसलिए उत्तराध्ययन सूत्र (4.5) में कहा गया है-'न वित्तेण ताणं लभे पमत्ते।' कठोपनिषद् (1.1.27) भी कहता है- ''न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः''। अर्थात् प्रमत्त व्यक्ति धन से त्राण को प्राप्त नहीं कर सकता और धन से कभी मनुष्य को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी में संवाद इस दृष्टि से रोचक है। वहाँ याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी कात्यायनी एवं मैत्रेयी को सम्पत्ति का बंटवारा करना चाहते हैं। तब मैत्रेयी कहती है- भगवन्! यदि यह सारी पृथ्वी धन से परिपूर्ण हो जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? इस पर याज्ञवल्क्य कहते हैं- नहीं, भोग सामग्रियों अथवा उपकरणों से सम्पन्न व्यक्तियों का जैसा जीवन रहता है वैसा ही तुम्हारा हो जाएगा। धन से अमृतत्व की आशा नहीं की जा सकती। उत्तराध्ययन (4.6) में भी कहा गया है-

थावरं जंगमं चेव, धणं धण्णं उवक्खरं।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, नालं दुक्खाउ मोयणे।।

अर्थात् कर्मों के कारण पीड़ित प्राणी को स्थावर-त्रस प्राणी, धन्य, धान्य एवं गृहोपकरण दुःख से मुक्त नहीं कर सकते।

अतः मनुष्य को निरन्तर अशुभ से शुभ की ओर, असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, हिंसा से अहिंसा की ओर बढ़ते रहना चाहिए। लौकिक अभ्युदय का अपना महत्त्व है, किन्तु उससे अधिक महत्त्व पारमार्थिक अभ्युदय का है, क्योंकि वह परम कल्याण की ओर ले जाता है। आज समाज के अभ्युदय की बात हो अथवा राष्ट्र के अभ्युदय की, सर्वत्र लौकिक अभ्युदय ही लक्ष्य में रहता है। कई बार तो पतन के मार्ग को ही अभ्युदय समझ लिया जाता है। उदाहरण के लिए श्रमशीलता जहाँ लौकिक अभ्युदय का साधन है वहाँ लोग श्रमरहित होने को अपना अभ्युदय मानते हैं। राष्ट्र के स्तर पर लोगों की योग्यता का विकास न कर बिना श्रम के वस्तुओं एवं धन का वितरण निरन्तर किया जाना श्रेयकारी नहीं हो सकता। उससे लोगों का अभ्युदय होने की अपेक्षा पतन ही अधिक सम्भव है। लोग अकर्मण्य हों, परमुखापेक्षी हों, पराधीन हों तो ऐसी योजनाएँ अभ्युदयकारी नहीं कही जा सकतीं।

मनुष्य की चेतना शक्ति, निर्णय क्षमता, शुभ संकल्प शक्ति एवं शारीरिक स्वास्थ्य का विकास करने वाली योजनाएँ तो अभ्युदयकारी हो सकती हैं, किन्तु इन्हें कुंठित करने वाली, किन्तु बाहर से प्रिय लगने वाली योजनाएँ पतन की ओर ले जाने वाली होती हैं। उनसे किसी का अभ्युदय सम्भव नहीं है। मनुष्य का अभ्युदय उसकी योग्यता के विकास एवं सही सोच से होता है। ऐसा होने पर व्यक्ति संग्रह की अपेक्षा वितरण को, संकीर्णता की अपेक्षा उदारता को, नकारात्मक सोच की अपेक्षा सकारात्मक सोच को, अभाव की अपेक्षा अनासक्ति को महत्त्व देता है। ★

अमृत-चिन्तन

आगम-वाणी

चत्त-पुत्त-कलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं न विज्जइ किंचि, अप्पियं पि न विज्जए।।

– उत्तराध्ययन सूत्र, 9.15

अनुवाद–पुत्र एवं पत्नी के त्यागी और गृह व्यापार से मुक्त भिक्षु के लिए न कोई वस्तु प्रिय होती है और न कोई अप्रिय होती है।

विवेचन:– उत्तराध्ययनसूत्र के नवम अध्ययन 'नमिप्रव्रज्या' में नमि राजर्षि के जीवन का वृत्तान्त है। वे मिथिला के राजा थे। किन्तु एक बार ऐसे दाहज्वर से पीड़ित हुए कि वैद्यों के द्वारा लाख उपाय करने पर भी स्वस्थ नहीं हो पाए। एक वैद्य ने शरीर पर चन्दन का लेप करने का परामर्श दिया। रानियाँ स्वयं अपने हाथों से चन्दन घिसने लगीं। हाथों के कंगनों (चूड़ियों) के परस्पर घर्षण से जो ध्वनि उत्पन्न हुई, उससे राजा को अधिक पीड़ा उत्पन्न हुई। अतः रानियों ने सौभाग्यसूचक एक-एक कंगन हाथ में रखकर शेष कंगन उतार दिए। राजा ने मंत्री से पूछा– कंगनों की आवाज नहीं हो रही है, क्या चन्दन घिसना बन्द कर दिया है? मंत्री ने बताया कि कंगनों के घर्षण की आवाज आपको अप्रिय लग रही थी, अतः रानियों ने एक-एक कंगन अपने हाथों में रखकर बाकी के कंगन उतार दिए हैं। एक कंगन से शोर उत्पन्न नहीं हो रहा है। राजा के लिए यह घटना-प्रसंग एकत्वानुप्रेक्षा का आधार बन गया एवं नमि राजर्षि ने चिन्तन प्रारम्भ किया–"जहाँ अकेला है वहाँ संघर्ष नहीं एवं जहाँ अनेक हैं वहाँ संघर्ष है, पीड़ा है। मुझे अपनी पीड़ा से छुटकारा पाना है तो एकत्व का अनुभव करना चाहिए। संसार के साथ जुड़कर मैं शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता।" इस प्रकार के चिन्तन के साथ ही उन्होंने निर्ग्रंथ मुनि बनने का संकल्प कर लिया। इस संकल्प के पश्चात् शयन करने पर राजा को गहरी निद्रा आई और दाहज्वर भी शान्त हो गया। प्रातःकाल होते ही राजा ने अपने को नीरोग अनुभव किया एवं समझ लिया कि संसार की आसक्ति का त्याग कर एकत्व का अनुभव करने में ही जीवन का सार है। वे पुत्र को राज्य भार सौंप कर निर्गंथ मुनि बन गए।

नमि राजर्षि मूलतः क्षत्रिय थे, किन्तु मुनि बन जाने के पश्चात् अब वे राज्य की चिन्ता से मुक्त हो गए। देवराज इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर उनकी परीक्षा लेने के लिए भी आया। मुनि नमि राजर्षि से अनेकविध प्रश्न किए, उनके क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का बोध कराया, किन्तु निर्ग्रंथ मुनि ने जो समाधान किये वे उनकी संसार के प्रति पूर्ण अनासक्ति का बोध कराते हैं। उसी शृंखला में इन्द्र ने जब कहा कि आपके द्वारा इस प्रकार प्रव्रज्या अंगीकार करने से समस्त मिथिला नगरी के प्रासादों में, घरों में दारुण कोलाहल व्याप्त है। यह अग्नि और वायु आपके राजभवन को जला रही है। इस अग्नि का प्रभाव अन्तःपुर पर भी दृष्टिगोचर हो रहा है। राज्य को इस प्रकार कष्ट में छोड़कर जाना आपके लिए उचित नहीं है।

नमि राजर्षि ने जो उत्तर दिया वह आम गृहस्थ को चौंकाने वाला है। गृहस्थ जीवन में जीते हुए हमारा परिवार और समाज से इस प्रकार जुड़ाव हो जाता है, जिससे हमें लगता है कि हम इन्हें छोड़कर चले जायेंगे तो इन्हें बड़ा कष्ट होगा। नमि राजर्षि कहते हैं कि मिथिला के जलने से मेरा कुछ नहीं जलता है। इस कथन का गहन तात्पर्य है। जिनका स्वार्थ राजा के साथ जुड़ा हुआ था, राजा के चले जाने पर वे दुःखी एवं पीड़ित हो रहे हैं। इसीलिए राजर्षि ने अपने एक उत्तर में कहा भी है कि मिथिला में शीतल छायादार, पत्र-पुष्प एवं फलों से युक्त एक चैत्य वृक्ष था जो बहुत से पक्षियों के लिए उपकारक था। वायु वेग से उस वृक्ष के उखड़ जाने पर परिवारजन एवं प्रजा रूपी ये पक्षी दुःखी एवं अशरणभूत होकर आक्रन्दन कर रहे हैं। इसमें राजा का दोष नहीं है। इस प्रकार की घटनाएँ संसार में स्वतः घटित होती रहती हैं। प्रतिदिन परिवार का कोई न कोई आश्रयदाता परिवारजनों को असहाय छोड़कर चल बसता है। उसके चले जाने के पश्चात् एक बार तो परिवारजनों को ऐसा लगता है कि मानो दुःख का पहाड़ टूट पड़ा हो, किन्तु वे धीरे-धीरे उस दुःख से ऊपर उठकर अपना जीवन सुचारू रूप से जीने लगते हैं। ऐसा होना भी चाहिए। संसार में कोई किसी का स्थायी आश्रय नहीं है। साधारणतया स्वयं पैरों पर खड़े होने के पश्चात् व्यक्ति सहारे को भूल भी जाता है। किन्तु जिनका जीवन अभी दूसरों के सहारे चल रहा है उनका आश्रय उजड़ जाने पर दुःखी होना स्वाभाविक है। इस अनित्य संसार में आश्रय का छूट जाना एक साधारण घटना है। नमि राजर्षि ने इस सत्य को समझ लिया था कि इस संसार के प्रति आसक्ति छोड़ने में जो सुख है, शान्ति है वह संसार के साथ बंधने में नहीं। उन्होंने प्रजा के लिए अपने स्थान पर पुत्र को कार्यभार सौंप दिया था, अर्थात् प्रजा की व्यवस्था करके वे निर्ग्रंथ मुनि बने थे। उन्होंने जनता को कोई धोखा नहीं दिया। यदि किसी शासक का देहान्त हो जाता है तब भी कोई नया शासक बनता ही है।

संसार में कोई किसी का तभी तक प्रिय है जब तक उसका उससे स्वार्थ सिद्ध होता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में भी कहा गया है- "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।" अपनी इच्छा की पूर्ति हेतु सबकुछ प्रिय लगता है। प्रियता और अप्रियता का यह एक मानदण्ड है। नमि राजर्षि इस मानदण्ड से ऊपर उठ चुके थे। इसलिए उनके लिए अब न कोई वस्तु प्रिय है और न कोई अप्रिय। वस्तुतः जो समता की पराकाष्ठा पर होता है। उसके लिए न कोई प्रिय होता है और न कोई अप्रिय। राजर्षि ने इसीलिए स्पष्ट रूप से कहा कि जब मैंने पुत्र और रानियों का त्याग कर दिया है, मेरे लिए कोई गृहस्थ का व्यापार शेष नहीं रहा है, भिक्षु का रूप मैंने धारण कर लिया है, तब मेरे लिए क्या प्रिय और क्या अप्रिय? साधु जीवन और गृहस्थ जीवन में यह एक बड़ा भेद है। एक साधु को राज्य के संचालन हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता, किन्तु गृहस्थ को लोग इस प्रकार के कार्य हेतु बाध्य करने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए भगवद् गीता में श्री कृष्ण के द्वारा अर्जुन को क्षात्रधर्म का निर्वाह करने हेतु युद्ध की प्रेरणा की गई। नमि राजर्षि तो निर्ग्रंथ मुनि बन गये थे, अतः उनकी साधना संसार से विरक्त एवं अनासक्त होकर ही हो सकती थी। इसीलिए वे अब मिथिला के मोह को त्यागकर उसकी प्रियता एवं अप्रियता से स्वयं को परे अनुभव कर रहे हैं। - **सम्पादक**

अमृत-चिन्तन

वाग्वैभव (21)

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

- साध्य को प्राप्त करने के लिए प्राप्त संयोग का उपयोग अपेक्षित है।
- जो समता रख सकता है, वही परीषह सहन कर सकता है। समत्व ही साधुत्व की कसौटी है। विषम परिस्थिति में समत्व रखें, व्यग्रता में नहीं झूलें।
- साधु और श्रावक में देखने की बात क्या है? बस एक ही बात है - समता।
- अभी वह योग्यता मुझमें नहीं आ पाई है, जो आनी चाहिये, अभी और निखार बाकी है, इस तरह के विचार साधक को प्रगति की ओर अग्रसर करते हैं।
- तपस्वी का सौन्दर्य है- क्षमाशीलता।
- परीषह-विजय समत्व-भाव से सम्भव है।
- सच्चे सन्त की पहचान उसके भक्तों की संख्या से नहीं, उसकी समत्व-साधना से होती है।
- प्रतिदिन संध्या को अपनी भूलों को याद कीजिये, डायरी में लिख डालिये। प्रतिदिन लिखते-लिखते कभी उन्हें मिटाने का विचार आएगा। भूलें मिटेंगी, समता बढ़ेगी। समता बढ़ेगी तो कषाय घटेंगे। परीषह-जय का यह सहज ढंग है।
- धर्म-संस्कारों के प्रति उपेक्षा रही तो भावी पीढ़ी सुरक्षित नहीं रह सकेगी।
- जिसने देह की ममता मार ली, वह तपाराधन कर सकता है।
- पाप छूटे बिना न किसी की गति सुधरी है, न सुधरने वाली है।
- स्थानकवासी समाज सामायिक और स्वाध्याय के बल पर टिका हुआ है।
- हमारी आस्था कमजोर है, क्योंकि अज्ञान का हमारे पर अधिक जोर है।
- बिना मन के धर्म क्रिया करने से पुण्यबंध तो हो सकता है, किन्तु निर्जरा नहीं।
- तीन करण तीन योग से ब्रह्मचर्य का पालन करने से बहुत कुछ उपलब्धि हो सकती है।
- आप भले ही दो पैसे का दान करें, ममता छोड़कर मन से करें।
- एक सच्ची सामायिक करने वाला भी नरक व तिर्यंच के द्वार बन्द कर देता है।
- धर्म का आचरण गिरती हुई आत्मा को ऊँचा उठाने वाला है।
- लोक-लाज से दिखावा तो हो सकता है, पर कर्म-निर्जरा नहीं हो सकती।
- भावपर्वूक किया गया एक बार का दान सम्यक्त्व-रत्न को प्राप्त करा देता है।

-हीरा प्रवचन-पीयूष से संकलित : श्री पी. शिखरमल सुराणा, चेन्नई

प्रवचन

असत्य का स्वरूप और उसकी भयानकता

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी

असत्य का रूप

शायद मुझे यह बताने की जरूरत नहीं पड़ेगी कि असत्य किसे कहते हैं। एक जमाना था जब लोगों को बुराई की पहचान करानी पड़ती थी। पर आज तो भलाई की पहचान करानी पड़ रही है। पाप क्या है, यह किसी को बताने की जरूरत नहीं होती, पर पुण्य क्या है, यह बताना पड़ता है। तो असत्य क्या है, झूठ क्या है, मृषावाद क्या है यह बताने की जरूरत नहीं होगी। छोटा-सा बच्चा जिसके दूधिये दांत भी नहीं आये, वह भी आज झूठ बोलना सीख जाता है। क्योंकि घरों का वातावरण ही ऐसा है, जहाँ सत्य की जगह असत्य का ही बोलबाला है। माता-पिता, भाई-बहन सब कोई बात-बात में झूठ बोलते हैं, और बच्चे उन्हें देखते हैं, बच्चों को भी झूठ बोलने का संस्कार मिलता है, और वे बहुत जल्दी सीख जाते हैं, माता-पिता के संस्कार पकड़ लेते हैं। आपके जीवन में ऐसे प्रसंग आते होंगे जब आप घर में बैठे होते हैं, बाहर कोई बुला रहा हो, तब आप बच्चे को कहते हैं कि जा कह दे, पिताजी घर में नहीं हैं।'' बच्चा आपकी आज्ञा का पालन जरूर कर लेगा, पर उसके मन पर क्या संस्कार पड़ेगा, ''पिताजी झूठ बोल रहे हैं।'' यही न?

एक वकील साहब थे। बड़े झूठे मुकदमे लड़ते थे। पत्नी ने एक दिन कहा- ''इतना झूठ मत बोला करो, कुछ तो भगवान से डरो।''

वकील साहब बोले- ''झूठ न बोलें तो वकालात ही डूब जायेगी, जो जितना अच्छा झूठ बोलेगा, वह उतना ही बड़ा वकील होगा।'' बच्चे ने पिताजी के शब्द सुन लिए। एक दिन वकील साहब बाहर से आते गर्म-गर्म जलेबियाँ लाए, बच्चे को दी, जा घर में ले जा। दो-तीन बच्चे थे। सबने मिलकर बीच में ही गटागट खाली। वकील साहब को मालूम हुआ कि जलेबी घर में नहीं पहुँची है, तो बच्चों को पूछा- जलेबी तुमने खाई? उसने कहा- ''नहीं?'' वकील साहब को गुस्सा आया। डांटा- अभी से झूठ बोलना सीख गया? एक-दो चपत लगाई, तो उसने सच बता दिया कि हम बच्चों ने मिलकर खाली। वकील साहब ने डाँटकर कहा-''खाई तो खाई, बता झूठ क्यों बोला?''

बच्चे ने रोते हुए कहा- ''मुझे भी वकील बनना है, आप ही ने उस दिन कहा था, जो

जितना ज्यादा झूठ बोलता है वह उतना ही बड़ा वकील होता है।''

तो बच्चों में आज झूठ, बेईमानी, चोरी आदि के बुरे संस्कार घर करते जा रहे हैं, उसका मुख्य कारण है- घर का वातावरण। माता-पिता का व्यवहार। आप बच्चों को सच बोलने की शिक्षा देते हैं और स्वयं झूठ बोलते हैं, तो उसका क्या असर होगा? हम देखते हैं बहुत से पिता स्वयं मुँह से सिगरेट का धुआँ निकाल रहे हैं और बच्चों से कहते हैं- ''बेटा! बीड़ी-सिगरेट मत पीना।'' कोई बच्चा आपसे पूछ ले- ''पिताजी! फिर आप क्यों पीते हैं?'' तो क्या उत्तर है आपके पास? बच्चे नकल प्रिय होते हैं, उनके मन पर उपदेश और शिक्षा का उतना असर नहीं होता, जितना व्यवहार का होता है। वे जैसा देखते हैं वैसा करते हैं। तो मैं कह रहा था आज छोटे-छोटे बच्चे झूठ बोलते हैं, कहना चाहिए माँ के पेट से ही झूठ बोलना सीखकर आते हैं। ऐसी स्थिति में झूठ क्या है, असत्य क्या है, यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

शास्त्रों में जहाँ असत्य का, मृषा का वर्णन किया गया है, वहाँ असत्य के विविध रूपों का वर्णन भी हुआ है। प्रश्नव्याकरण सूत्र (1.2) में असत्य को शठ, अनार्य, माया-मृषा, वंचना, अभ्याख्यान आदि तीस नामों से बताया गया है। उक्त सब प्रवृत्तियाँ असत्य की कोटि में आती हैं। धूर्तता, ठगाई, परनिन्दा आदि को भी असत्य में गिना गया है। भगवती सूत्र (शतक 12, उद्देशक 5) में एक प्रश्न के उत्तर में भगवान ने माया के पन्द्रह नाम बताये हैं। उसमें भी असत्य का समस्त परिवार आ गया है, जैसे- माया, उपधि, निकृति, वक्रता, वंचना आदि। तो यह सब असत्य के भाई बंधु हैं। सिर्फ झूठ बोलना, असत् को सत् बताना मात्र ही असत्य नहीं है। यह तो असत्य का सर्व सामान्य रूप है। मन में और वचन में यह जो कपट का रूप है वह भी असत्य में गिना गया है। आचार्यों ने बताया है-

अन्नं भासइ अन्नं करेइ त्ति मुसावाओ।-निशीथचूर्णि, 3988

कहना कुछ और करना कुछ यह मृषावाद है। ऊपर मधुरता का दिखावा, आडम्बर और भीतर में कटुता, इसे भी असत्य ही कहा जायेगा। कोई आदमी किसी को मीठा बोलकर ठगता है, लालच दिखाकर अपने जाल में फांसता है। उसे गलत रास्ता बताकर कष्ट में डालता है। किसी की गुप्त बात प्रकट करके परस्पर में भेद डालता है, प्रीति तुड़वाता है। सौ देकर दो सौ का झूठा लेख आदि लिखता है- तो यह सब असत्य का आचरण है। श्रावक के सत्यव्रत के अतिचारों में जो पाँच अतिचार बताये हैं-**मिथ्योपदेश-रहस्याभ्याख्यान-कूट- लेख-क्रिया न्यासापहार-साकार-मंत्रभेदाः**- मिथ्या उपदेश, गुप्त भेद बताना, झूठा लेख लिखना, धरोहर रखकर मुकर जाना और चुगली खाना अथवा परस्पर में फूट डालने की नारद वृत्ति करना- ये सत्य के अतिचार हैं। इनके आचरण

से सत्यव्रत दूषित होता है, अतः गृहस्थ को इन अतिचारों से बचना चाहिए।

घर-घर में जासूसी

सत्य-असत्य का स्वरूप सामने आने पर आपको लगता होगा- आज का जन-जीवन कितना सत्यमय है और कितना असत्यमय? आज जिधर भी देखो असत्य का बोलबाला है। लोग कहते तो हैं- सत्य का बोलबाला है, पर आचरण इससे उलटा कर रहे हैं। सत्य की बात मुँह पर है, किन्तु जीवन में पद-पद पर असत्य का ज़हर घोलते जा रहे हैं। रात-दिन असत्य प्रधान चिंतन, असत्य व्यवहार और असत्य भाषण की कड़ी बंधी चल रही है। जब भी देखो यही सोचना, यही विचारना कि अमुक की वस्तु रखी है तो मांगने को आने पर कैसे नट जाएं, अमुक दोनों में बड़ी प्रीति है तो कैसे उनमें फूट डालना, मनमुटाव पैदा करना, अमुक की गुप्त बातें, छल छिद्र देखने के लिए जासूसी करना आदि सब असद् आचरण है। यह मत सोचिए कि जासूसी सिर्फ राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रों में की जाती है। आज तो हर वर्ग, हर परिवार व हर घर में जासूसी होती नज़र आयेगी। एक दूसरे के छल-छिद्र देखना, अवगुण देखना, बुराइयाँ देखनी यह जासूसी नहीं तो क्या है? व्यापारिक प्रतिस्पर्धा में एक दूसरे को गिराने की भावना आती है। अब गिरायें कैसे? इसके लिए उसकी दुर्बलता, उसकी बुराई और छल छिद्र देखे जाते हैं। थोड़ी सी कण भर बुराई मिल गई तो उसे मणभर रूप देकर लोगों में उसे बदनाम करना, उसकी प्रतिष्ठा पर धूल डालने का प्रयत्न करना, उपहास, मजाक आदि से उसे नीचा दिखाने की चेष्टा करना, यह सब रूप आते हैं प्रतिस्पर्धा में और इसके लिए होती है जासूसी। अनेक व्यक्ति ऐसे मिलेंगे, जिनका धंधा ही यह हो गया है कि इसकी बात उसको भिड़ा दी, उसकी बात इसको बता दी और बीच में अपना उल्लू सीधा कर लिया। ऐसे लोग बिल्ली के जैसे होते हैं, बस कोई चूहा फंसा तो उसका काम तमाम कर डालना।

इस प्रकार आज के जन-जीवन में असत्य चिन्तन, असत्य आचरण, असत्य भाषण बढ़ता ही जा रहा है। इससे रौद्र ध्यान की वृद्धि होती है, परिणामों की कलुषता बढ़ती है। कलुष परिणामों से मनुष्य का पतन होता है। आत्मा की पवित्रता, मन की उज्ज्वलता और आत्मबल का नाश होता है। परस्पर अविश्वास और भय का वातावरण बनता है। एक दूसरे के प्रति शंका, आशंका और धोखाधड़ी की भावना बनती है। इस तरह जीवन में चिंता, भय और संदेह छाया रहता है।

बहुत से मनुष्य दूसरों को धोखा देने के लिए, ठगने के लिए बड़े-बड़े जाल गूंथते रहते हैं। जैसे बहेलिया चिड़ियाओं को फंसाने के लिए जाल फैलाकर खुद कहीं छुपकर बैठ जाता है। बस एकटक ध्यान लगाकर देखता है कि कौन चिड़िया आकर फंस रही है? इसी

प्रकार असत्यवादी धूर्त मनुष्य भी दूसरों को जाल में फांसने के लिए असत्य का जाल फैलाते हैं, स्वयं एक ओर छिपे रहते हैं और जब कोई भोला पंछी उसमें फंस जाता है तो फिर खुशी में नाच उठते हैं, उसकी अच्छी तरह से हजामत करके ही छोड़ते हैं। कल्पना करिए- यदि उस भोले पंछी की जगह कभी आप किसी के जाल में फंस गए तो आपको कितनी पीड़ा होगी? किस प्रकार आपकी आत्मा भीतर-ही-भीतर क्रन्दन करके उसे दुराशीष देगी? तो क्या यही स्थिति उसकी नहीं होती होगी जो आपके जाल में फंसा है? उस समय एक ओर करुण दशा और दूसरी ओर क्रूर कठोर मनोदशा। कितना रौद्र रूप धारण करती हैं आपकी भावनाएँ, दूसरों की पीड़ा और क्रंदन पर भी दया नहीं आती। बस एक ही ध्यान रहता है, अपना काम बनना चाहिए। अपना काम बनाने के लिए जो चाहे सो किया जा सकता है- धोखा, हिंसा, हत्या।

पुरुष ही नहीं, आज तो महिलाएँ भी झूठ, फरेब और धोखाधड़ी में पुरुषों से आगे बढ़ रही हैं। दूसरे देशों में जासूसी करने के लिए, उनके सैनिक और राजनैतिक भेद लेने के लिए आज स्त्रियों का खुलकर उपयोग किया जा रहा है। उन्हें जासूसी की ट्रेनिंग दी जाती है। धोखा, छल करने की शिक्षा दी जाती है। वे स्त्रियाँ दूसरों को छलने के लिए अपना शरीर तक उन्हें सौंप देती हैं। यह कितना घृणित और दुष्ट तरीका है? क्या आप नहीं जानते कि जिस व्यक्ति को आप दूसरों को धोखा देना सिखाते हैं, वह कभी आपको भी धोखा दे सकता है। आपका भी सत्यानाश कर सकता है। धोखे का शस्त्र जो दूसरों के लिए तैयार किया जाता है, वह कभी अपने ऊपर चल गया तो.....?

एक व्यापारी के यहाँ एक लड़का मुनीम था। बोलचाल में वह बड़ा चालू था। पास में ही एक दूसरा व्यापारी था। दोनों में प्रतिस्पर्धा चलती थी। सेठ ने मुनीम से कहा- "देखो अपने पड़ौसी का ध्यान रखा करो, कौन-कौन बाहर के व्यापारी आते हैं, क्या माल बेचता है, किस भाव बेचता है, सब रिपोर्ट रखा करो। इस काम के लिए तुम्हें स्पेशल तनख्वाह दूँगा।" बस मुनीम को स्पेशल तनख्वाह का लालच आ गया। उसने पड़ौसी के मुनीम से दोस्ती की, उसके साथ घूमने जाता, सिनेमा जाता और होटलों में खाता-पीता। उससे दुकान के भेद पूछने लगा। एक दिन पड़ौसी सेठ ने अपने मुनीम को उस मुनीम के साथ देखा तो उसे शक हो गया। वह समझ गया, उसने भी अपने मुनीम को वही सीख दी जो पड़ौसी ने अपने मुनीम को दी थी। अब परिणाम यह हुआ कि उधर की बातें इधर आने लगीं और इधर की सब बातें उधर जाने लगीं। दोनों मुनीमों को लालच का चस्का लग गया। कुछ ही दिनों में दोनों के भाव-ताव, खरीददार, व्यापारी आदि टकराने लगे और यह भेद खुलने लगा कि अपनी बात उधर जाती है। आखिर परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे दोनों व्यापारियों की

गुप्त बातें सब बाहर आने लगीं और व्यापार दबने लग गया। जब सारा भंडा फूटा तो दोनों ही मुनीमों को वहाँ से निकाल दिया गया।

अतः जिस शस्त्र का प्रयोग आप दूसरों के लिए करना चाहते हैं, वह कभी-कभी अपने ऊपर भी चल जाता है और तब आपको पता चलता है कि यह वृत्ति कितनी क्रूर और कितनी निकृष्ट है।

(क्रमशः)

मुक्त आत्माओं के प्रकार

श्री जशकरण डागा

कर्मास्रव से मुक्त होने की अपेक्षा जीवों के अनेक प्रकार हैं, जिनमें मुख्य रूप से जानने योग्य प्रकार हैं-

1. **दृष्टिमुक्त**- मिथ्यात्व से रहित होने वाली सम्यग्दृष्टियुक्त आत्मा को दृष्टि मुक्त कहते हैं। इसमें चतुर्थ गुणस्थान एवं आगे के गुणस्थान वाली आत्माएँ आती हैं।
2. **अविरतिमुक्त**- सर्व प्रकार की अविरति से अतीत अर्थात् छठे गुणस्थान एवं आगे के गुणस्थानवर्ती संयती आत्माएँ इसके अन्तर्गत आती हैं।
3. **प्रमादमुक्त**- पाँचों प्रमादों से अतीत अर्थात् सातवें गुणस्थान एवं आगे के गुणस्थान वर्ती अप्रमत्त संयती आत्माएँ प्रमादमुक्त होती हैं।
4. **मोहमुक्त**- मोह से सर्वथा रहित वीतराग हुई ग्यारहवें उपशान्त व बारहवें क्षीण मोहनीय गुणस्थानवर्ती एवं आगे के गुणस्थानवर्ती आत्माएँ मोहमुक्त कहलाती हैं।
5. **जीवनमुक्त**- तेरहवें एवं चौदहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी तथा अयोगी केवली आत्माएँ जीते हुए मुक्त होने से जीवन-मुक्त कहलाती हैं। इन्हें ईषत् सिद्ध परमात्मा भी कहते हैं।
6. **देहमुक्त**- गुणस्थानातीत जीव जो द्रव्य-कर्म, भाव-कर्म और नो कर्म (शरीर इन्द्रियादि) से सर्वथारहित होते हैं, उन्हें देह मुक्त (साक्षात् सर्वथा मुक्त) सिद्ध परमात्मा कहते हैं।

उपर्युक्त प्रकार से मोक्ष मार्ग में आगे बढ़कर मुक्त होने के ये क्रमिक प्रकार हैं। जीवों के मुक्त होने का प्रारम्भ चतुर्थ गुणस्थान से होकर, सिद्ध बुद्ध होने पर पूर्ण होता है। सभी चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त दृष्टि मुक्त आत्माएँ देशोन अर्ध पुद्गल-परावर्तन काल में अवश्य सिद्ध बुद्ध हो, मोक्ष को उपलब्ध होती हैं।

-डागा सदन, संघपुरा, पो. टोंक-304001 (राज.)

प्रवचन

धर्म का प्रथम चरण : अहिंसा एवं दया

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी

आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. द्वारा 31 अगस्त 1996 को महावीर भवन, लाखन कोटड़ी, अजमेर में दिये गये प्रवचन का आशुलेखन श्री धर्मपाल मेहता, अजमेर द्वारा तथा संपादन श्री पुखराज मोहनोत, जोधपुर द्वारा किया गया है।-**सम्पादक**

संसार के संसरण को मिटाकर अविचल पद पर विराजमान सिद्ध भगवन्तों, अनन्त ज्ञान व अनन्त दर्शन के धारक अरिहंत भगवन्तों, साधना के पथ पर चरण बढ़ाकर पाप का निरन्तर प्रत्याख्यान करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

तीर्थंकर भगवन्तों की आदेय अनुपम वाणी को गणधरों ने सूत्र रूप में ग्रथित किया। *''अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।''* इस अवसर्पिणी काल के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर की वही अमृतोपम वाणी वर्तमान में आगमों के रूप में हमारी अमूल्य धरोहर है। आगम-प्रमुख ग्यारह अंगों में तीसरे अंग-सूत्र 'स्थानांग' का विवेचन आपके समक्ष रखा जा रहा है। स्थानांग के अध्ययनों को 'स्थान' कहा गया है। इस सूत्र के प्रथम स्थान में एक-एक स्थान का वर्णन हुआ है। कल मैंने आपके समक्ष एक सूत्र रखा था-'एगा वेयणा।' वेदना एक है। वेदना अर्थात् सुख या दुःख का अनुभव। क्यों होती है वेदना? जीव जैसे कर्म करता है, वैसा ही उनका फल भोगना होता है। यह फल भोगना ही वेदना है। जीव पहले क्रिया करता है। क्रिया करने में जैसे जीव के परिणाम होते हैं, वैसे ही कर्मबंध होते हैं और जैसे कर्म-बंध होते हैं, वैसी ही वेदना जीव भोगता है। इस तरह बंध पहले तथा वेदना बाद में होती है।

भगवती सूत्र में गणधर गौतम स्वामी भगवान महावीर से पृच्छा करते हैं-''भगवन्! क्रिया पहले या वेदना? जीव सुख-दुःख रूप में, अनुकूलता-प्रतिकूलता के रूप में जो भी वेदना करता है, कर रहा है तो उसका वेदन करना पहले है या क्रिया का करना पहले है?''

उत्तर में भगवान ने फरमाया-*''पढमे किया पच्छा वेयणा।''* जीव पहले क्रिया करता है और उसके भावानुरूप ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि आठ कर्म बंधते हैं। उदय में आने पर वे जीव को सुख-दुःख का वेदन कराते हैं। कर्म-वेदन के पश्चात् जीव उन-उन कर्मों की निर्जरा करता है। इस प्रकार क्रिया पहले है, वेदना पहले नहीं है।

'क्यों होती है वेदना?' प्रश्न के समाधान में स्थानांग-सूत्र में ही अगला सूत्र भगवान

ने दिया है- ''एगे पाणाइवाए'' अर्थात् प्राणातिपात एक है। किसी प्राणी के प्राणों का अतिपात करना अर्थात् विनाश करना या मारना प्राणातिपात है। प्राण दस हैं- श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय के बलप्राण, मन, वचन, काया इन तीन योगों के बलप्राण, उच्छ्वास- निश्वास तथा आयु। इन दस प्राणों का नाश करना हिंसा है, प्राणातिपात है।

हिंसा काया से की जाए, वचन से की जाए, मन से की जाए, स्वयं की जाए, दूसरों से करायी जाए अथवा अनुमोदन की जाए, सभी में हिंसा है। जहाँ-जहाँ पाप का, अशुभ कर्म का वर्णन आया है वहाँ सर्वप्रथम प्राणातिपात पाप का कथन है। शास्त्र-पाठ में अठारह पापों का उल्लेख आता है, उनमें प्रथमोल्लेख है प्राणातिपात का। हिंसा सभी पापों का मूल है, आधार रूप है। मृषावाद (असत्य कथन), अदत्तादान (चौर्य कर्म) आदि बाकी सभी प्राणातिपात के पश्चात् हैं। इसका भी कारण है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव हिंसा अर्थात् प्राणातिपात को तो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में जानते हैं, पर मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह आदि को जानते तक नहीं हैं। जबकि अनेक प्राणी झूठ क्या है और सत्य क्या है- इनकी जानकारी नहीं रखते। वे नहीं जानते कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए। संसार के अनंत-अनंत प्राणी ऐसे हैं, जिनके पास बोलने के लिए ज़बान नहीं हैं। वे एकेन्द्रिय प्राणी हैं, उन्हें केवल स्पर्शेन्द्रिय प्राप्त है। सभी प्राणी जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे एक दूसरे का व्याघात करते हैं, प्राणों का व्यपरोपण करते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में बताया गया है- ''प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।'' प्रमादपूर्वक किसी के प्राणों को घात पहुँचाना हिंसा है।

हिंसा या प्राणातिपात सबसे बड़ा पाप कहा गया है तो सबसे बड़ा धर्म क्या हुआ? जीवों पर दया, जीवों की रक्षा, जीवों को बचाना ही सबसे बड़ा धर्म है। सूत्रकृतांग में भगवान ने फरमाया है-

एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण।
अहिंसा समयं चेव, एतावंत्तं वियाणिया।।

-सूत्रकृतांग, 1.1.4.10

ज्ञानी होने का सार यही है कि- किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसा मूलक समता ही धर्म का सार है। इसी अहिंसा के लिए जीवदया, जीवरक्षा आवश्यक है। आचारांग सूत्र में प्रभु फरमाते हैं-

सव्वे पाणा पिआउआ, सुहसाया दुक्खपडिकूला।
अप्पियवहा पियजीविणो, जीविउकामा।।

सव्वेसिं जीवियं पियं। नाइवाएज्ज कंचणं।।

-आचारांगसूत्र, 1.2.3

प्रभु के अनुसार सभी प्राणियों को अपनी ज़िन्दगी प्यारी है। सुख सबको अच्छा लगता है और दुःख बुरा। वध सभी को अप्रिय है और जीवन प्रिय।

सभी प्राणी जीना चाहते हैं, अतः किसी की हिंसा मत करो। दशवैकालिक सूत्र में भी उल्लेख आता है-

''सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं।'' -दशवैकालिक सूत्र, 6.11

कहा गया है- सभी प्राणी जीना चाहते हैं। मरना कोई नहीं चाहता। संसार में जितने भी जीव हैं, चाहे वे छोटे हों या बड़े, समझदार हों या ना समझ, विकसित हों या अविकसित, सम्पन्न हों या विपन्न, सुखी हों या दुःखी, चाहे जैसे भी हों, पर वे सभी जीने की इच्छा रखते हैं। जीव को परिभाषित करते हुए भी सूत्रकार यही बताते हैं-''प्राणान् धारयतीति जीवः'' जो प्राणों को धारण करते हैं वे जीव हैं, प्राणी हैं। प्राण नहीं तो प्राणी नहीं। जो जिया है, जी रहा है, जीयेगा वही जीव है। चेतना जिसका लक्षण है वह जीव है।

विश्व के विभिन्न पंथों, सम्प्रदायों, धर्म-मतों में अनेक पक्षों को लेकर कुछ न कुछ अन्तर मिलेगा, पर जहाँ तक जीव-रक्षा का प्रश्न है, हिंसा से बचने की बात है, वहाँ सभी एक मत हैं, एक राय रखते हैं, सभी में समानता का भाव है। सभी चाहते हैं कि कोई किसी को मारे नहीं, हनन न करे, घात न करे।

अभी बताया था कि सभी जीव जीना चाहते हैं, मृत्यु कोई नहीं चाहता। मृत्यु सबके लिए भयावह है। संसार में सात भय बताये गये हैं- (1) प्रथम है इहलोक भय अर्थात् अपनी ही जाति के प्राणी से डरना। यथा- मानव का मानव से, देव का देव से, तिर्यंच का तिर्यंच से, नारकी का नारकी से डरना। (2) द्वितीय भय है- परलोक भय- अर्थात् दूसरी जाति वाले से डरना। जैसे- मनुष्य का देव या तिर्यंच से, देव का मनुष्य या नारकी से। (3) तीसरा भय है- आदानभय- यथा धन की रक्षा के लिए चोर आदि से डरना। (4) चौथा भय है- अकस्माद्भय- बिना किसी कारण के अचानक डरना। (5) पाँचवाँ भय है- वेदनाभय। रोग, कष्ट, पीड़ा आदि से डरना। (6)छट्ठा भय है- मरण भय- मरने से डरना और (7) सातवाँ भय है अश्लोकभय- अपकीर्ति, बदनामी से डरना। (स्थानांग सूत्र, 7,5.3, सूत्र 549 व समवायांग सूत्र 7 वां) इन सातों भयों में मृत्यु का भय सर्वाधिक बढ़कर है। निकृष्ट से निकृष्ट जीव भी मरने से भय खाता है। चाहे कोई जीव नाली का हो, चाहे कोई श्लेषादि का कीड़ा हो, चाहे मनुष्य लोक का मानव हो, सम्राट् हो अथवा तो देवलोक का वैमानिक देव या सर्वार्थ सिद्ध विमान का देव हो। चाहे मात्र एक इन्द्रिय रखने

वाला जीव हो या फिर उससे अधिक विकसित इन्द्रियों वाला प्राणी हो। चाहे कोई हो, पर जीव है तो जीवन चाहेगा, मरने से भय खायेगा। दुःखी से दुःखी अथवा घोर दुःखी प्राणी भी नहीं चाहता कि उसकी मृत्यु हो। गन्दगी में रहने वाले कीड़ों को वहाँ कौनसा सुख है, क्या खाने को मिलता है वहाँ, कौनसी सुन्दर जगह है वहाँ रहने की, पर वे भी जीना चाहते हैं, मरने की बात से भयभीत होते हैं, बुरा लगता है मरना।

वस्तुतः अहिंसा का सिद्धान्त, अहिंसा का धर्म सबसे पवित्र सिद्धांत है, धर्म है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवंतों ने कहा है-

वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं परूवेमो, एवं पण्णवेमो-
सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता
न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परिघेतव्वा,
न परितावेयव्वा।
इत्थं विजाणह नत्थित्थ दोसो। अरियवयणमेयं।

(आचारांग सूत्र 1.4.2)

प्रभु के वचनों का तात्पर्य स्पष्ट है। वे कह रहे हैं- "हम ऐसा कहते हैं, हम ऐसा बोलते हैं, हम ऐसी प्ररूपणा करते हैं, हम ऐसी प्रज्ञापना करते हैं कि- किसी भी प्राणी, भूत, जीव या सत्त्व को मारना नहीं चाहिए। न उन पर अनुचित शासन करना चाहिए। न उनको गुलामों की तरह पराधीन बनाना चाहिए। न उन्हें परिताप पहुँचाना चाहिए। न उनके प्रति किसी तरह का उपद्रव करना चाहिए। इस प्रकार के अहिंसा धर्म में कोई दोष नहीं है। अहिंसा धर्म वस्तुतः पवित्र-आर्य धर्म है, सिद्धांत है।

बृहत्कल्पसूत्र में भी इसी सत्यकथन की पुष्टि होती है-

जं इच्छंसि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि, एत्तियगं जिणसासणयं।।

-बृहत्कल्पभाष्य, 45.84

जिस दुःख, पीड़ा, विनाश या हिंसा की क्रिया को तुम अपने लिए नहीं चाहते, वही अन्य के लिए कैसे रुचिकर होगी? अवश्य नहीं होगी। जिस दयापूर्ण जीवरक्षा या अहिंसा के व्यवहार को तुम अपने लिए पसन्द करते हो, वही व्यवहार दूसरे प्राणियों के साथ करो।

किसी को प्राण रहित कर देना तो शक्य है, पर प्राण-दान करना, मृत को पुनर्जीवित करना किसी के वश की बात नहीं है। अतः हिंसा महापाप है, घोरातिघोर दुष्कर्म है।

तीर्थंकर महावीर ने धर्म के सभी अंगों का, सभी प्रकार की धर्माराधनाओं-साधनाओं का वर्णन अपनी अमृतोपम दिव्य वाणी में किया है। वे धर्म के स्वरूप को दर्शाते

हुए सर्वप्रथम अहिंसा को धर्म बतलाते हैं। कहा है- ''*धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा, संजमो, तवो।*'' (दशवैकालिक सूत्र 1.1) धर्म उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा उसमें सर्वप्रथम है। अहिंसा ही जीवन का भव्य मार्ग है, जीवन की संजीवनी शक्ति है। चाहे व्यक्ति आत्मशांति चाहता हो और चाहे सम्पूर्ण समाज विश्व-शांति की आकांक्षा रखता हो, इसकी पूर्ति तभी संभव होगी जब जन-जन के मन-तन-वचन में अहिंसा का समावेश हो जायेगा। आज समाज, राष्ट्र, विश्व की परिस्थितियाँ चिन्ताजनक हैं। मानव का आचार-विचार सब कुछ बदल गया है। लेकिन सत्य यही है कि जब तक मानव-मात्र दूसरे का दुःख अपना दुःख नहीं समझेगा तब तक अहिंसा धर्म की आराधना नहीं हो सकती। अहिंसा है तो दया है और दया है तो अहिंसा है। अहिंसा और दया के पश्चात् ही अन्य-अन्य धर्म हैं। चाहे भगवान महावीर की वाणी में कहा जाए तो-''*अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो।*'' (दशवैकालिक सूत्र, 6.9) अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति स्वयं को संयत रखना अथवा उन पर दया करना- यही अहिंसा का पूर्ण दर्शन है। सन्त-महापुरुषों की वाणी में कहा जाए तो-''*दयामूलो भवेद्धर्मो, दया प्राण्यनुकम्पनम्।*'' अर्थात् दया धर्म का मूल है और प्राणियों पर अनुकम्पा (अहिंसा) करना दया है। जीवदया के बगैर धर्म की महिमा नहीं है। किसी कवि ने भी कहा है-

चार वेद मुख से पढ़या, समझ बिना सब झूठ।
जीवदया पाली नहीं, तो सब माथा कूट।।

कितना ही समझ लिया, विद्वान् हो गए, धर्म के मर्मज्ञ बन गए, परन्तु इन सबके होते हुए भी यदि जीवदया को नहीं अपनाया तो सब व्यर्थ है। थोकड़े में एक प्रश्न मिलता है कि- ''*किं तीए पढ़ियाए पयकोडिए पलालभूयाए। जत्थेतियं न नाणं, परस्स पीड़ा न कायव्वा।*'' चाहे किसी को कितनी ही भाषाओं की जानकारी हो जाए, चाहे कोई कितना ही विद्वान् बन जाए, चाहे कोई कितने ही दर्शनों का ज्ञाता बन जाए, विश्व के अनेकानेक धर्म-सिद्धान्तों का विशेषज्ञ बन जाए या अनेक शास्त्रों, सूत्रों, ग्रंथों के लाखों-करोड़ों पद स्मरण करले, कण्ठस्थ करले, लेकिन यह सब घास के पूले इकट्ठे करने जैसा ही होगा, अगर व्यक्ति ने दया को नहीं जाना, नहीं जाना कि दूसरों को दुःख नहीं देना चाहिए। समस्त ज्ञान का सार यही है कि अहिंसा का पालन किया जाए, प्राणिमात्र को अपनी ही तरह मानकर किसी को भी पीड़ा, ठेस, दुःख नहीं पहुँचाया जाए। जिसने इसे समझ लिया, उसने सब कुछ समझ लिया। यह एक बात किसी की समझ में नहीं आई तो मान लीजिए कि उसे कुछ भी समझ में नहीं आया। कम से कम शब्दों में कहूँ तो ''पाप (हिंसा) नहीं करना।''- इन तीन शब्दों को आचरण में ढ़ालने वाले भी मोक्ष पा लेते हैं।

मिथ्या मान्यताएँ हिंसा व पाप की सबसे बड़ी कारण बन जाती हैं। मिथ्या मान्यताओं में अत्यधिक डूबा आज का मानव संवेदनहीन बनता जा रहा है। जैन-समाज भी आज हिंसा के घेरे में घिरता नजर आ रहा है। जब भी अहिंसा के आचरण की बात आती है। आपकी संवेदनशीलता सिकुड़ जाती है।

विज्ञान ने वनस्पति में जीवन बहुत बाद में सिद्ध किया, पर जैनों के जिनेश्वर तीर्थंकर भगवंतों ने तो अरबों, खरबों वर्ष पूर्व ही कह दिया था कि पेड़-पौधों में जीवन है। उन महापुरुषों ने पृथ्वी, जल, वायु व अग्नि में भी जीवन होना बता दिया था। गणधर गौतम स्वामी द्वारा पृच्छा करने पर भगवान महावीर ने तो यहाँ तक कहा है कि- हे गौतम! जिस प्रकार एक जन्मांध, गूंगा, बहरा, अवयवहीन मानव प्रहार करें तो जिस प्रकार वह व्यक्ति असह्य पीड़ा का अनुभव करता है ठीक उसी प्रकार पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों को भी पीड़ा होती है।

पहले फर्नीचर मे नाम पर अलमारियाँ, कपाट, पलंग, बाजोट आदि बनवाये जाते थे। आज तो नई-नई फैशन, नये-नये डिजाइन के सैकड़ों तरह के फर्नीचर बन रहे हैं। घर सजाया जा रहा है। न जाने कितने प्रकार से लकड़ी का उपयोग और दुरुपयोग किया जाने लगा है। इन सबके लिए हरे-भरे पेड़ काटे जा रहे हैं, जंगल के जंगल नष्ट किये जा रहे हैं। हरियाली नष्ट हो रही है और आप उसे सजावट मान रहे हैं। जीव मर रहे हैं और आपके लिए वह उत्पादन है। यह सही है कि विश्व में विज्ञान के कारण भौतिकता का अत्यधिक विकास हुआ है पर अहिंसा के अभाव में भौतिकता की उत्कर्षता मानव को राक्षसी प्रवृत्ति में खींचती जा रही है। विश्व में चारों ओर हिंसा का प्रत्यक्ष ताण्डव हो रहा है। वनस्पति ही नहीं पृथ्वी (पत्थर, मिट्टी), पानी, अग्नि (विद्युत) तथा वायु का दुरुपयोग भी निरन्तर बढ़ रहा है। पर्यावरण संरक्षण के परिप्रेक्ष्य में, राष्ट्रीय कर्त्तव्यों और जीवन-मूल्यों में जिस अहिंसा को सर्वोपरि माना गया, उसी को ठोकर मारकर मानव पर्यावरण को निरन्तर अधिक से अधिक प्रदूषित करता हुआ अपने राष्ट्रीय-कर्त्तव्य से च्युत हो रहा है और जीवन मूल्यों का पतन कर रहा है।

महावीर के इस अहिंसात्मक देश में कत्लखानों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मारे जाने वाले पशुओं की संख्या बढ़ रही है। प्रतिदिन लाखों की संख्या में निर्दोष व मूक प्राणियों को मौत के घाट उतारा जा रहा है। मांसभक्षण करने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। पशुओं की नर्म खाल से फैशनेबल पर्स, हैंडबैग, जूते आदि वस्तुओं के शौक के कारण जीवित पशुओं पर उबलता हुआ पानी डालकर उन्हें मारना व खाल उतारना आज के उद्योगों में शीर्ष स्थान पा गया है। कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि आप लोगों के,

जिनोपासकों के और महावीर की सन्तानों के घरों में भी मद्य-मांस सेवी युवा और नर्म-चर्म की फैशनेबल चीजों के शौकीन मिल जायें। अहिंसक जाति, अहिंसक समाज हिंसा को बढ़ावा दे तो यह शर्मनाक है। विश्व को विनाश से बचाना है तो मानव को हिंसा छोड़, अहिंसा को अपनाना होगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सर्वनाश निकट ही समझना चाहिए।

आयुष्य प्रतिक्षण क्षीण हो रहा है, फिर भी समझदार मानव अपनी ही समझ से अनजान बन रहा है। आयु का एक वर्ष समाप्त हुआ है, पर मना रहा है 'बर्थ डे'-जन्मदिन। अंडे आदि से मिश्रित केक काटना क्या आवश्यक है, पर केक कटते हैं। अंडे आदि की हिंसा के साथ ही मोमबत्तियाँ जलाकर और भी अन्य अनेक प्रकार से हिंसा आदि पाप करके भी खुशियाँ मनाई जा रही हैं। इसे ही तो कहते हैं- हँस-हँस कर कर्म-बंधन करना। जानते हैं आप सभी कि इनका छुटकारा रो-रो कर ही होने वाला है।

आज गर्भ-परीक्षण हो रहे हैं। गर्भ में यदि लड़की है तो भ्रूण-हत्या का सिलसिला चल निकला है। क्या कहेंगे इसे? यह पंचेन्द्रिय-घात है, प्राणातिपात है, महाहिंसा है। इस तरह से अजन्मे, अविकसित बच्चों की हत्या व हिंसा व्यर्थ का पाप ही कहा जायेगा। न तो इन कार्यों को अभयदान कहेंगे और न जीवनदान। जहाँ व्यक्ति को, प्राणी को रखने, पालने में भय का भाव हो और जहाँ जीवन को ही नष्ट कर दिया जाता हो वह उत्थान का मार्ग कैसे हो सकता है?

आप जैन हैं, ओसवाल हैं, अहिंसा के पुजारी हैं। अरे! कभी देखकर पता करें, पूछ और सुनकर जानें कि घर के गमले में लगे पौधे पर क्या बीतती है, जब कोई उसके पास जाकर माली से कहता है- इस पौधे को काटना है, इसे उखाड़ फेंकना है। कहना तो दूर, यदि मन में भी पौधे के विनाश के प्रति विचार आ जाये तो पौधे के पत्ते सिकुड़ जायेंगे, वह पौधा मुरझा जायेगा। पौधा एकेन्द्रिय जीव है, केवल स्पर्शनेन्द्रिय का मालिक है, मात्र शारीरिक ढ़ांचा है। न जिह्वा है न नाक, न कान, न आँखें। इस पर भी अनर्गल भाव की तरंगें उसे भय पहुँचाती हैं, हिंसा और विनाश के वचनों का स्पर्श उसको निर्जीव-सा बना देता है। सोचिए जो पंचेन्द्रिय जीव है और पेट में अभी पल ही रहा है, जिसने अभी गर्भ से बाहर आकर इस विश्व को देखा तक नहीं है, उसकी हत्या के लिये प्रयत्नशील होना एवं परीक्षण करवाकर घात का विचार करना उसके लिए कितना भयानक होगा? उससे आगे का कदम, उसका विनाश आपको किस अधोगति में ले जायेगा? ब्रह्महत्या और मुनि हत्या के समान ही भ्रूण हत्या का पाप है।

मानव किसे कहते हैं? जिसमें मानवता के गुण हों और जो मननशील हो। मानवता में अनेक मानवीय गुणों का समावेश होता है, यथा- दया, करुणा, सौहार्द आदि। दया

अहिंसा का ही दूसरा रूप है। दयालु व्यक्तियों को अन्य प्राणियों के दर्द को देखकर दया आती है, मन में कम्पन होता है, उन्हीं के समान दर्द की अनुभूति होती है। प्राणी हत्या देखकर वे अत्यन्त द्रवित, शोकित, खेदित होते हैं। कई बार पानी में कीड़े आ जाते हैं या कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। बहनें पानी छानते समय, रसोई में या स्नानादि के समय उन्हें बचाने का प्रयत्न करती हैं। आंगन धोते समय, नाली आदि साफ करते समय भी वे ध्यान देती हैं। फिर भी कीड़े, कीड़ी, मकोड़े जैसे अन्य जीव मर जाते हैं। बहनें यहाँ आती हैं और कहती हैं- "महाराज! बचाने का प्रयास किया,पर कई जीव तो मर गए। हमें प्रायश्चित दीजिए।" प्रायश्चित लेती हैं वे। एक तरफ छोटे-छोटे जीवों की जाने-अनजाने में हुई विराधना के लिए ऐसा दुःख, ऐसी तड़प, ऐसी पीड़ा, और दूसरी तरफ गर्भ के पंचेन्द्रिय जीवों की इन्जेक्शन लगाकर या अन्यान्य उपायों से हत्या, हिंसा। तड़पा-तड़पा कर, टुकड़े-टुकड़े करवा कर उनका प्राणघात। कितने दुःखद आश्चर्य की बात है।

व्यक्ति स्वयं के नियन्त्रण में रह नहीं पाता। वासना, भोग, कुशील में अनियन्त्रित बने रहना चाहता है। अपने इन पापों का, इस असंयमित आचरण का भयानक दंड दूसरों को दे रहा है। देने तक तो पाप शायद अधिक भारी न बनें, पर ऐसा करके प्रसन्न हो रहा है, तनिक भी खेदित नहीं होता। नहीं सोचता कि ककड़ी छीलकर प्रसन्नता प्रकट करने का कैसा भयानक फल मिला? मानव-भव में जीते-जी शरीर की खाल उतारवानी पड़ी। नन्हें बालक के सिर पर गर्म रोटी रखी फलतः सिर पर खैर के अंगारे रखवाने पड़े। कितने-कितने शास्त्र-दृष्टांत आप सुनते हैं, पर फिर भी दया का कहीं पता नहीं। लगता यही है कि पापों की भारी गठरी से आत्मा को बोझिल बनाते हुए आज के व्यक्ति का अन्तर्मन घबराता नहीं है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में बताया गया है-

अट्ठा हणंति, अणट्ठा हणंति, कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति।
पाणवहो चंडो, रुद्धो, खुद्धो अणारियो, निग्घिणो, निस्संसो, महब्भयो।।

-प्रश्नव्याकरण सूत्र, 1.1

कुछ लोग प्रयोजन से हिंसा करते हैं, कुछ लोग बिना प्रयोजन के हिंसा करते हैं, कुछ क्रोध के वशीभूत होकर हिंसा करते हैं, कुछ लोभ-लालच के फेर में पड़ जाते हैं और इसी कारण हिंसा कर बैठते हैं तथा कुछ लोग अज्ञानवश हिंसाभिभूत हो जाते हैं।

कारण चाहे कुछ भी रहा हो, पर प्राणवध (हिंसा) चंड है, रौद्र है, क्षुद्र है, अनार्य है, करुणारहित है, क्रूर है और भयंकरतम है- महाभयंकर है।

भगवान महावीर ने अहिंसा की बात सबसे पहले कही। आगम-शास्त्रों में स्थान-स्थान पर हिंसा-त्याग का अर्थात् अहिंसा का महत्त्व बताया गया है। भगवती आराधना

(790) में उल्लेख है-''*सव्वेसिमासमाणं हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं।*'' अहिंसा सभी आश्रमों (धर्मों) का हृदयस्थल है। अहिंसा ही विश्व के सभी धर्मग्रंथों का गर्भ-स्थल (उत्पत्ति-स्थान) है। भक्तपरिज्ञा (93) में आता है-''*जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।*'' किसी भी अन्य प्राणी की हिंसा करना, वस्तुतः अपनी ही हत्या है और अन्य जीवों पर दया करना अपने पर दया करना है। (अपनी ही दया है।) भक्त परिज्ञा (91) के अनुसार- ''*धम्ममहिंसा समं नत्थि*'' अहिंसा के तुल्य कोई अन्य धर्म नहीं है। सम्बोधसत्तरी (6) में भी यही बताया है-

सव्वओ वि नईओ कमेण जह सायरम्मि निवडंति।
तह भगवई अहिंसाए सव्वे धम्मा सम्मिल्लंति।।

अर्थात् जैसे सभी नदियाँ जाकर क्रमशः समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही सभी धर्म अहिंसा में समा जाते हैं। महाभारत (11/13) कहता है-''*अहिंसा परमो धर्मः, सर्व प्राणभृतां परः।*'' तात्पर्य यह कि प्राणी मात्र के लिए अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

ये सभी कथन सिद्ध कर रहे हैं कि भगवती अहिंसा प्रथम धर्म है। सत्य, अचौर्य, शील और अपरिग्रह आदि का समावेश अहिंसा में हो एकता है। समस्त जीवों पर दया करने रूप अहिंसा को भगवान महावीर ने अक्षय सुखदाता और पापों से बचाने में समक्ष बताया है। ''*अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्व भूएसु संजमो।*'' जगत् के सूक्ष्म-बादर, त्रस-स्थावर सभी प्राणियों के प्रति स्वयं को संयत रखना ही अहिंसा का पूर्ण दर्शन है। दया की रक्षा के लिए ही सत्य, क्षमा आदि समस्त शेष गुण बताये गए हैं। प्राणियों पर अनुकम्पा दया है। यही दया धर्म का मूल है। अहिंसा के अतिरिक्त जितने भी व्रत हैं वे अहिंसा के स्तंभ पर टिके हुए हैं। अहिंसा की भावना का आधार यदि नहीं तो सत्य अपनी सत्यता प्रकट कैसे कर सकेगा? ऐसे ही अहिंसाभाव-भूमि के बगैर अचौर्य-व्रत पालन भी संभव नहीं है। कुशील से वन में अनेक प्राणियों की हिंसा अवश्यंभावी है, अतः ब्रह्मचर्य पालन भी अहिंसा का आश्रय लिए हुए है। परिग्रह का अर्थ ही दूसरों के शोषण की भावना के साथ जुड़ा है, अतः जब तक अहिंसाव्रत की भावना अन्तर में जाग्रत नहीं होगी, तब तक अपरिग्रह का पालन भी नहीं किया जा सकेगा।

दया अहिंसा का ही एक रूप है। दया है तो सत्य आदि का पालन सही है। दया नहीं तो कुछ भी नहीं। यदि किसी को खोटा बताने, नीचा दिखाने, दुःखी बनाने की भावना से सत्य बोल रहे हैं, तो वैसा सत्य-कथन भी पाप है। दशवैकालिकसूत्र (7.12) में कहा है कि-

तहेव काणं काणे त्ति, पंडगं पंडगं त्ति वा।
वाहियं वा वि रोगित्ति, तेणं चोरेत्ति णो वए।।

यदि किसी व्यक्ति के एक आँख नहीं है और आप उसे काणा कह कर पुकारते हैं तो यह क्या है? सत्य है आपका कहना, पर वह सत्य-कथन भी कथन के योग्य नहीं है, क्योंकि ऐसा कहकर आप उस एक आँख वाले व्यक्ति के दिल को ठेस पहुँचा रहे हैं। यह पाप है, हिंसा है। ऐसी भाषा से मन की दया, करुणा, अनुकम्पा की भावना समाप्त हो जाती है। ध्यान यह रखना है कि किसी के भी द्वारा चोर को चोर, अंधे को अंधा, यहाँ तक कि रोगी को भी रोगी न कहा जाए। ऐसा कोई नहीं है जिसे चोर न कहा जा सके। बाह्यरूप में पाप का त्याग है, पर अन्दर में पाप का सेवन किया जा रहा है। वस्तुतः यह चोरी है। चोर को कोई मुँह पर चोर कह दे तो गुस्सा आ जाता है। चोर कहने वाला असत्य-कथन नहीं कर रहा, पर पाप अवश्य कर रहा है। जिसे चोर कहा जा रहा है वह तपस्वी है, ज्ञानी है, ईमानदार है, अन्य अनेक गुण हैं, पर सेल्स टेक्स, इन्कम टेक्स आदि की चोरी कर रहा है।

हमें हमारे विषय में मनन-चिन्तन करना है कि हम क्या हैं? अपने अन्दर झांककर अपने को जानना, समझना है। दूसरों के अवगुण देखना, देखकर उन्हें मुँह पर कहना या पीठ पीछे निन्दा, विकथा करना। क्या होगा इससे? भीतर की दया और करुणा का झरना सूख जाएगा। सत्य कहा जायेगा, पर उसमें मन की करुणा नहीं होगी? जहाँ करुणा नहीं, वहाँ अहिंसा नहीं। जहाँ अहिंसा नहीं, वहाँ अधर्म है, पाप है।

किस रूप में होनी चाहिए श्रावक की दया? क्या स्वरूप हो उस दया का? इस पर गहन चिन्तन की आवश्यकता है। आज सभी को दया का स्वरूप समझने और समझाने की आवश्यकता है। धर्म का मूल ही दया और अनुकम्पा है। आप सभी अपनी दृष्टि को सम्यक् बनाइए, सम्यक् विचारों को विकसित कीजिए। नित्य प्रति ऐसे प्रत्याख्यान कीजिये कि जिससे पापों का छुटकारा हो। दया को अन्तरतम में धारण कीजिए। लक्ष्य यदि दया का बना लिया और प्राणातिपात को छोड़कर दया की ओर कदम बढ़ा दिए तो आपको शांति प्राप्त हो सकेगी।

श्रुतज्ञान का जल

जिसने जीव और पुद्गल का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आमतत्त्व को पहचान लिया हो, जिसकी बुद्धि परिपक्व हो और उसमें ज्ञान के साथ वैराग्य हो तो उसको कोई खतरा नहीं रहता। जैसे दीपक में तेल है और बत्ती ठीक स्थिति में है तो हवा के साधारण छोटे-मोटे झोंको से वह दीपक बुझ नहीं सकता। लेकिन यदि तेल ही समाप्त हो गया तो वह दीपक साधारण-सा झोंका पाकर भी बुझ जाएगा। इसलिए क्या गृहस्थ जीवन में और क्या त्यागी जीवन में, यदि हम चाहते हैं कि जीवन कुमार्ग और कुसंगति में पड़कर गलत रास्ते पर नहीं लगे, तो श्रुत-ज्ञान का जल अधिक मात्रा में डालना चाहिए, तभी खतरे से बचे रहेंगे। -*आचार्य श्री हस्ती*

प्रेरक प्रसंग

आत्मा का साथी- ज्ञान

आचार्य श्री आनन्दऋषि जी

जैन दर्शन के महान् ज्ञाता श्री वादिदेवसूरि के पास एक वृद्ध पुरुष ने संयम ग्रहण किया। संयम ग्रहण करने के पश्चात् वादिदेवसूरि ने अपने वृद्ध शिष्य को ज्ञान-प्राप्ति की प्रेरणा दी। वृद्ध संत ने अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके ज्ञानाभ्यास करना प्रारम्भ किया और वे प्रतिदिन एकान्त में बैठ कर कुछ याद करने लगे।

उन्हें ऐसा करते देखकर पड़ोस में रहने वाले एक व्यक्ति ने यह सोचकर कि बूढ़ा तोता अब क्या राम-राम पढ़ेगा, उनका उपहास करना प्रारम्भ किया। एक दिन उसने जहाँ वृद्ध संत ज्ञानाभ्यास करते थे, वहीं पर एक मूसल लाकर जमीन में गाड़ दिया और प्रतिदिन उसको पानी से सींचने लगा। उस व्यक्ति का यह कार्य देखकर संत को बड़ा आश्चर्य हुआ। कौतूहल न दबा सकने के कारण उन्होंने एक दिन पूछा-"भाई! इस मूसल को सींचने से क्या लाभ होगा?"

व्यक्ति बोला- "मैं इसे इसलिए सींचता हूँ कि किसी दिन यह हरा-भरा हो जायेगा और इसमें फूल-फल लग जाएँगे।"

संत चकित हुए और बोले- "भला यह सूखी लकड़ी का मूसल भी कभी हरा-भरा हो सकता है?"

"क्यों नहीं, जब आप जैसे बूढ़े व्यक्ति भी अब विद्या प्राप्त कर सकते हैं, तो इस मूसल में फल-फूल क्यों नहीं लग सकते? जरूर लग सकते हैं।"

सन्त को यह सुनकर अपनी ज्ञान-प्राप्ति के विषय में बड़ी आशंका और निराशा हुई। वे अपने गुरुजी के समीप पहुँचे और अपने प्रयत्न के विषय में निराशा व्यक्त की। गुरुजी ने दृढ़तापूर्वक कहा- "यह कैसी बात है? मूसल जड़ है, परन्तु तुम चैतन्यशील हो। उसकी और तुम्हारी तुलना कैसे हो सकती है?"

संत पुनः बोले- "गुरुदेव! मैं वृद्ध हो गया हूँ, अब कैसे ज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ?"

श्री वादिदेवसूरि मुस्कराये और बोले- "तुम्हारा यह शरीर बूढ़ा हो सकता है, किन्तु इसके अन्दर रही हुई आत्मा बूढ़ी नहीं है। उसमें चैतन्य का उज्ज्वल प्रकाश ज्यों का त्यों जगमगा रहा है। तुम्हारे निराश होने का कोई कारण नहीं है। अभी तुम जितना भी ज्ञान प्राप्त कर लोगे, वह तुम्हारी आत्मा का साथी बनकर सदा तुम्हारे साथ चलेगा। तुम्हारी अनन्त यात्रा का पाथेय बनकर वह तुम्हारे साथ रहेगा।"

गुरु की बात सुनकर संत की आँखें खुल गईं और उन्होंने उसी क्षण से किसी की परवाह किये बिना तथा तनिक भी निराशा का अनुभव किये बिना ज्ञानार्जन में चित्त लगाया और कुछ समय बाद ही एक महान् विद्वान् और दार्शनिक बन गये।

मनुष्य को किसी भी प्रकार की बाधा की परवाह किये बिना जीवन के अन्त तक ज्ञान-प्राप्ति की आकांक्षा और प्रयत्न का त्याग नहीं करना चाहिए।

-संपादनः डॉ. दिलीप धींग

चरणों में तेरे रहकर भगवन्

मधुर व्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनि जी म.सा.

(तर्जः- जाने वो कैसे लोग थे जिनको प्यार.....।)

चरणों में तेरे रहकर भगवन्, प्यार ही प्यार मिला,
श्रद्धा से जब पूजा मैंने, सत्य का ज्ञान मिला।
चरणों में तेरे.....।।टेर।।

तुम संग कैसी प्रीत लगी कि छूटा जग मुझसे,
जादू तूने ऐसा किया कि छूटा जग मुझसे।
बंधन सारे टूट गए जब तूने बाँध लिया।
चरणों में तेरे.....।।1।।

जीना मरना सीखा भगवन्, जग में जी करके,
जीते जी मर जाना कैसा, सीखा अब तुमसे,
तू ही है अब मांझी, मेरी नैया पार लगा।
चरणों में तेरे.....।।2।।

गुज़र गया हर पल दुःख का जब तेरा ध्यान किया,
हर मुश्किल आसान हुई जब तूने साथ दिया,
मोह-माया में फंसा हुआ हूँ, अब आज़ाद हुआ।
चरणों में तेरे.....।।3।।

ज़हर भी पीना कह दे अगर तूं, वह भी पी लेंगे,
राजी जिसमें तू है भगवन्, वैसे जी लेंगे,
बिन पीए मदहोश हुआ मैं, कैसा जाम पीया।
चरणों में तेरे.....।।4।।

-संकलयित्रीः- श्रीमती तनुजा समदड़िया, बोरिवली, मुम्बई (महा.)

शोधालेख

जैन प्राकृत साहित्य : एक सर्वेक्षण (2)

प्रो. सागरमल जैन

आगमों का रचना काल

सामान्यतया आगम-साहित्य में अंग आगमों को गणधरकृत और अंगबाह्य ग्रंथों को आचार्यकृत माना जाता है, किन्तु बौद्धिक ईमानदारी से विचार करने पर उपलब्ध सभी अंग आगम भी किन्हीं एक गणधर की या गणधरों के समूह की रचना हो ऐसा नहीं माना जा सकता है। क्योंकि अंग आगमों की विषयवस्तु उनके ही अंतःसाक्ष्यों के आधार पर पर्याप्त रूप से बदल गई है। प्रथमतः आचारांग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध भी कुछ परवर्तीकालीन है। उसके प्रथम श्रुतस्कंध की मुख्य-मुख्य बातों को छोड़कर उनमें भी कालक्रम में कुछ बातें डाल दी गई है। यद्यपि भगवतीसूत्र को भगवान महावीर और गौतम के बीच संवाद रूप माना जाता है, किन्तु इसमें नन्दीसूत्र, प्रज्ञापनासूत्र आदि के जो निर्देश उपलब्ध हैं, वे यह तो अवश्य बताते हैं, कि वल्लभी की वाचना के समय इसे न केवल लिपिबद्ध किया गया, अपितु इसकी सामग्री को व्यवस्थित और सम्पादित भी किया गया है। ज्ञाताधर्मकथा तीर्थंकर महावीर द्वारा कथित दृष्टान्तों एवं कथाओं का संकलन रूप है। भाषिक परिवर्तन के बावजूद भी यह ग्रंथ अपने मूल स्वरूप में बहुत कुछ सुरक्षित रहा है। उपासकदशा की भी यही स्थिति है। किन्तु अन्तकृत्दशा की विषयवस्तु पर्याप्त रूप से परिवर्तित और परिवर्धित हुई है। उसमें स्थानांग के उल्लेखानुसार 10 अध्ययन थे, जबकि आज 8 वर्ग एवं 10 अध्ययन हैं। यही स्थिति अनुत्तरौपपातिक और विपाकसूत्र की भी मानी जा सकती है। प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु तो पूर्णतः दो बार बदल चुकी है। विपाकसूत्र में आज सुखविपाक और दुःखविपाक ऐसे दो वर्ग हैं और बीस अध्ययन हैं, जबकि पहले इसमें दस ही अध्ययन थे। इसी प्रकार कुछ आगमों की विषयवस्तु पूर्णतः बदल गई है और कुछ की विषय वस्तु में कालक्रम से परिवर्तन, परिवर्धन एवं संशोधन हुआ है, किन्तु आचारांग, सूत्रकृतांग, भगवती, ज्ञातासूत्र आदि में बहुत कुछ प्राचीन अंश आज भी सुरक्षित है।

अंगबाह्य साहित्य में उपांग सूत्रों में प्रज्ञापना आदि कुछ के कर्ता और काल सुनिश्चित है। प्रज्ञापना ईसापूर्व या ईसा की प्रथम शती की रचना है। उववाई या औपपातिक सूत्र की विषय वस्तु में भी, जो सूचनाएँ उपलब्ध हैं और जो सूर्याभदेव की कथा वर्णित है, वह सब उसे ईसा की प्रथम शती के आस-पास का ग्रंथ सूचित करती हैं। राजप्रश्नीय का कुछ अंश तो पालीत्रिपिटक के समरूप है। उसमें आत्मा या चित्तसत्ता के प्रमाणरूप जो तर्क दिये गये

हैं, वे त्रिपिटक के समान ही हैं, जो उसकी प्राचीनता के प्रमाण भी हैं। सूर्यप्रज्ञप्ति एवं चन्द्रप्रज्ञप्ति का ज्योतिष भी वेदांग ज्योतिष के समरूप होने से इन ग्रंथों की प्राचीनता को प्रमाणित करता है। उपांग साहित्य के अन्य ग्रंथ भी कम से कम वलभीवाचना अर्थात् ईसा की पाँचवी शती के पूर्व के ही हैं। छेदसूत्रों में से कल्प, व्यवहार, दशा और निशीथ के उल्लेख तत्त्वार्थ में हैं। तत्त्वार्थ के प्राचीन होने में विशेष संदेह नहीं किया जा सकता है। इनमें साधु के वस्त्र, पात्र आदि के जो उल्लेख हैं, वे भी मथुरा की उपलब्ध पुरातत्वीय प्राचीन सामग्री से मेल खाते हैं। अतः वे भी कम से कम ईसा पूर्व या ईसा की प्रथमशती की कृतियाँ हैं। अंत में दशवैकालिक और उत्तराध्ययन की प्राचीनता भी निर्विवाद है। यद्यपि विद्वानों ने उत्तराध्ययन के कुछ अध्यायों को प्रक्षिप्त माना है, फिर भी ई.पू. में उसकी उपस्थिति से इंकार नहीं किया जा सकता है। दशवैकालिक का कुछ संक्षिप्त रूप तो आर्य शय्यम्भव की रचना है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। नन्दी और अनुयोग अधिक प्राचीन नहीं हैं। प्रकीर्णकों में से 9 का उल्लेख स्वयं नन्दीसूत्र में प्रदत्त आगमों की सूची में है। अतः उनकी प्राचीनता भी असंदिग्ध है। यद्यपि सारावाली आदि कुछ प्रकीर्णक वीरभद्र की रचना होने से 10वीं शती की रचनाएँ हैं।

दिगम्बर परम्परा में मान्य आगमतुल्य ग्रंथ

यद्यपि दिगम्बर परम्परा आगमों के विच्छेद की पक्षधर है, फिर भी उसकी यह मान्यता है कि दृष्टिवाद के अंतर्गत रहे हुए पूर्वज्ञान के आधार पर कुछ आचार्यों ने आगमतुल्य ग्रंथों की रचना की थी, जिन्हें दिगम्बर परम्परा आगम स्थानीय ग्रंथ मानकर ही स्वीकार करती है। इनमें गुणधर कृत कसायपाहुड प्राचीनतम है। इसके बाद पुष्पदंत और भूतबलि कृत छक्खण्डागम (षट्खण्डागम) का क्रम आता है। ज्ञातव्य है कि ये दोनों ग्रंथ प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं, और जैन कर्मसिद्धान्त से सम्बन्धित हैं। इन पर लगभग नवीं या दसवीं शती में धवल, जयधवल और महाधवल नाम से विस्तृत टीकाएँ लिखी गईं। ये टीकाएँ संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा में मिलती हैं। किन्तु इसके पूर्व इन पर चूर्णिसूत्रों की रचना प्राकृत भाषा में हुई थी। इन दोनों ग्रंथों के अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा में वट्टकेर रचित मूलाचार और आर्य शिवभूति रचित भगवती आराधना– ये दोनों प्राकृत ग्रंथ भी आगम स्थानीय माने जाते हैं। मैं इन चारों ग्रन्थों को दिगम्बर परम्परा की ही यापनीय शाखा के आचार्यों की कृति मानता हूँ। इनके अतिरिक्त आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथ समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकायसार, अष्टपाहुड, दसभक्ति आदि ग्रंथों को भी आगमतुल्य ही माना जाता है। इनके साथ ही यतिवृषभकृत तिलोयपन्नत्ति, प्रभाचन्द्रकृत द्रव्यसंग्रह, कुन्दकुन्द कृत बारस्स अणुवेक्खा, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि भी दिगम्बर परम्परा में रचित प्राकृत के महत्त्वपूर्ण

आगम स्थानीय ग्रंथ हैं। दिगम्बरों में प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रंथ लिखने की यह परम्परा पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में भी यथावत् जीवित रही है। लगभग 10 वीं शती में चामुण्डराय ने गोम्मट्टसार नामक ग्रंथ के दो खण्ड जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड, जो मूलतः कर्मसिद्धान्त से सम्बन्धित हैं, प्राकृतभाषा में ही लिखे हैं। इसी प्रकार 12 वीं शती में वसुनन्दी ने श्रावकाचार और 14वीं शती में भट्टारक पद्मनन्दी ने 'धम्मरसायण' नामक ग्रंथ भी प्राकृतभाषा में लिखे। इसके पूर्व भी अंगपण्णत्ति आदि कुछ प्राकृत ग्रंथ दिगम्बर आचार्यों द्वारा लिखे गये थे। यद्यपि दिगम्बर परम्परा में प्राकृत ग्रंथों की भाषा मुख्यतः शौरसेनी प्राकृत ही रही है, फिर भी वसुनन्दी के 'श्रावकाचार' पद्मनन्दी के 'धर्मरसायण' की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत देखी जाती है। ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर आचार्यों ने अर्धमागधी और मुख्यतः महाराष्ट्री प्राकृत को अपनी लेखनी का विषय बनाया।

उपर्युक्त ग्रंथों के साथ ही जैन कर्मसाहित्य का पंचसंग्रह नामक ग्रंथ भी प्राकृत भाषा में उपलब्ध है। ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में प्राकृत भाषा में निबद्ध पंचसंग्रह उपलब्ध हैं। यद्यपि दिगम्बर परम्परा में संस्कृत भाषा में भी पंचसंग्रह नामक ग्रंथ मिलते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में प्राचीन कम्मपयडी आदि और देवेन्द्रसूरि रचित नवीन पाँच कर्मग्रन्थ भी प्राकृत में ही रचित हैं।

आगमिक व्याख्या-साहित्य

आगमों के पश्चात् प्राकृत साहित्य की रचना के क्रम की दृष्टि से आगमिक व्याख्याओं का क्रम आता है। इनमें निर्युक्तियाँ प्राचीनतम हैं। रचनाकाल की अपेक्षा निर्युक्तियाँ आर्यभद्र या भद्रबाहु की रचनाएँ हैं और उनका काल ईस्वी सन् की प्रथम या द्वितीय शती के बाद का नहीं हो सकता है। यद्यपि सभी महत्त्वपूर्ण आगम ग्रंथों पर निर्युक्तियाँ नहीं लिखी गई हैं, आगम साहित्य के कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों पर ही निर्युक्तियाँ लिखी गई थी, जो आज भी उपलब्ध हैं। इनमें प्रमुख हैं- 1. आवश्यक निर्युक्ति, 2. आचारांग निर्युक्ति, 3. दशवैकालिक निर्युक्ति, 4. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, 5. सूत्रकृतांग निर्युक्ति, 6. दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति, 7. वृहत्कल्पनिर्युक्ति आदि। निशीथसूत्र पर भी निर्युक्ति लिखी गई थी, किन्तु यह निशीथ भाष्य में इतनी घुलमिल गई है कि उसे उससे अलग कर पाना कठिन है। इनके अतिरिक्त सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित पर भी निर्युक्ति लिखे जाने की प्रतिज्ञा तो उपलब्ध है, किन्तु ये निर्युक्तियाँ लिखी भी गई थी या नहीं, यह कह पाना कठिन है। प्राचीन स्तर की निर्युक्तियाँ उस आगम का संक्षिप्त उल्लेख कर कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। इनके अतिरिक्त निर्युक्ति साहित्य के दो अन्य ग्रंथ और भी उपलब्ध हैं- 1. पिण्डनिर्युक्ति और 2. ओघनिर्युक्ति। यद्यपि ये दोनों ग्रंथ दशवैकालिक निर्युक्ति के ही एक

विभाग के रूप में भी माने जाते हैं। साथ ही श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा इन दोनों को आगम स्थानीय भी मानती है। गोविंदाचार्य कृत दशवैकालिक निर्युक्ति की सूचना तो उपलब्ध है, किन्तु वर्तमान में यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

आगमिक व्याख्या-साहित्य में निर्युक्तियों के बाद भाष्य लिखे गये। भाष्यों में विशेषावश्यकभाष्य विशेष प्रसिद्ध है। इसके तीन विभाग हैं। प्रथम विभाग में पंच ज्ञानों की चर्चा है। दूसरा विभाग गणधरवाद के नाम से प्रसिद्ध है- इसमें ग्यारह गणधरों की प्रमुख शंकाओं का निर्देश कर महावीर द्वारा दिये गये उनके समाधानों की चर्चा उपलब्ध है। तृतीय विभाग निह्नवों की चर्चा करता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में वृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, जीतकल्पभाष्य, पंचकल्पभाष्य भी उपलब्ध हैं। बृहत्कल्प पर वृहद्भाष्य और लघुभाष्य ऐसे दो भाष्य मिलते हैं। व्यवहारभाष्य, जीतकल्पभाष्य ऐसे दो अन्य भाष्य भी मिलते हैं। पिण्डनिर्युक्तिभाष्य के भी दो संस्करण मिलते हैं। इसी प्रकार पिण्डनिर्युक्ति पर एक अन्य भाष्य भी लिखा गया है, किन्तु ये तीनो भाष्य मैंने नहीं देखे हैं। भाष्यों में व्यवहारभाष्य, जीतकल्पभाष्य और वृहत्कल्पभाष्य आज मूल प्राकृत और उसके हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित भी हैं- इस सम्बन्ध में समणी कुसुमप्रज्ञाजी का श्रम स्तुत्य है। यह स्पष्ट है कि भाष्य भी मूलतः प्राकृत भाषा में रचित हैं, साथ ही यह भी ज्ञातव्य है कि निर्युक्ति और भाष्य दोनों पद्यात्मक हैं, जबकि कालांतर में इन पर लिखी गई चूर्णियाँ प्राकृत-संस्कृत मिश्रित गद्य में लिखी गई हैं। फिर भी चूर्णियों की भाषा पर प्राकृत का बाहुल्य है। भाष्यों का रचनाकाल 6-7 शती के लगभग है, यद्यपि कुछ भाष्य परवर्ती भी है। चूर्णियाँ 7 वीं-8 वीं शती के मध्य लिखी गई। चूर्णियों में निशीथचूर्णि सबसे महत्त्वपूर्ण और विशाल है। यह अपने मूलस्वरूप में चार खण्डों में प्रकाशित है। इसके साथ ही आवश्यकचूर्णि भी अति महत्त्वपूर्ण है, यह भी अपने विशाल आकार में मूल मात्र ही दो खण्डों में मुद्रित हुई थी, किन्तु वर्तमान में प्रायः अनुपलब्ध है। इनके अतिरिक्त अन्य चूर्णियाँ निम्न हैं- आचारांगचूर्णि, उत्तराध्ययनचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि, सूत्रकृतांगचूर्णि, जीतकल्पचूर्णि, नन्दीचूर्णि आदि। इनमें से नन्दीचूर्णि भी प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी से प्रकाशित है। आज इन चूर्णियों के हिन्दी अनुवाद की महती आवश्यकता है।

चूर्णियों के पश्चात् प्राकृत आगम-साहित्य पर टीकाएँ भी लिखी गई हैं। टीकाएँ प्रायः संस्कृत में हैं। टीकाकारों में हरिभद्र, शीलांक, अभयदेव, मलयगिरि आदि प्रसिद्ध हैं। किन्तु इन टीकाओं में शांतिसूरि की उत्तराध्ययन की पाइअ टीका (प्रायः नवी शती) अति प्राचीन एवं प्रसिद्ध है जो मूलतः प्राकृत भाषा में ही निबद्ध है। यह लगभग सौ वर्ष पूर्व दो खण्डों में प्रकाशित हुई है। टीकाओं में यही एक ऐसी टीका है, जो प्राकृत भाषा में लिखित है।

प्राकृत के स्वतंत्र ग्रंथ

निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओं के साथ ही पूर्व मध्यकाल में प्राकृत भाषा में अनेक आगमिक विषयों पर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे गये। इनमें भी जीवसमास, लोकविभाग, पक्खीसूत्र, संग्रहणीसूत्र, क्षेत्रसमास, अंगपण्णत्ति, अंगविज्जा आदि प्रमुख हैं। इसी क्रम में ध्यान-साधना से सम्बन्धित जिनभद्रगणि का झाणाध्ययन अपरनाम ध्यानशतक (ईसा की छठी शती) भी प्रकाश में आया। हरिभद्र के प्राकृत योग ग्रंथों में योगविंशिका, योगशतक सम्बोधप्रकरण प्रसिद्ध ही हैं। इसी प्रकार हरिभद्र का धूर्ताख्यान भी बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है, किन्तु हम इसकी चर्चा प्राकृत कथा साहित्य में करेंगे।

इसी क्रम में उपदेशपरक प्राकृत ग्रंथों में हरिभद्र के सावयपण्णति, पंचाशकप्रकरण, पंचसुत्त, पंचवत्थु, संबोधप्रकरण आदि भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसी क्रम में अन्य उपदेशात्मक ग्रंथों में धम्मसंगहिणी, संबोधसत्तरी, धर्मदासगणि की उपदेशमाला, खरतरगच्छीय आचार्य सोमप्रभ की उपदेशपुष्पमाला आदि भी प्रसिद्ध हैं। इसी क्रम में दिगम्बर परम्परा में देवसेन (10 वीं शती) के भावसंग्रह, दर्शनसार, आराधनासार, ज्ञानसार, सावयधम्मदोहा आदि भी प्राकृत की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

प्राकृत कथा साहित्य

यद्यपि आगमों में अनेक तो पूर्णतः कथा रूप ही हैं, जैसे ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, अन्तरकृत्दशा, विपाकसूत्र, औपपातिकसूत्र, पर्युषणा कल्प आदि। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का कुछ अंश, जो ऋषभदेव, भरत आदि के चारित्र का वर्णन करता है, भी कथा रूप ही है। किन्तु इनके अतिरिक्त भी आगमिक व्याख्या-साहित्य में विशेष रूप से निर्युक्तियों, भाष्यों और चूर्णियों में भी अनेक कथाएँ है। पिण्डनिर्युक्ति, संवेगरंगशाला, आराधनापताका आदि में भी अनेक कथाओं के निर्देश या संकेत उपलब्ध हैं। विषयों का स्पष्टीकरण करने में ये कथाएँ बहुत ही सार्थक सिद्ध होती हैं। इन उपदेशात्मक कथाओं के अतिरिक्त जैन आचार्यों ने अनेक आदर्श पुरुषों के जीवन चरित्रों पर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे हैं। इनमें तीर्थंकरों और शलाका पुरुषों के चरित्र प्रमुख हैं। आगमों में भगवान महावीर आदि के जीवन के कुछ प्रसंग ही वर्णित हैं। तीर्थंकरों एवं अन्य शलाका पुरुषों के चरित्र को लेकर, जो प्राकृत भाषा में स्वतंत्र ग्रंथ लिखे गये, उनमें सर्वप्रथम विमलसूरि के 'पउमचरियं' की रचना हुई है। रामकथा के संदर्भ में वाल्मीकि की संस्कृत भाषा में निबद्ध 'रामायण' के पश्चात् प्राकृत भाषा में रचित यही एक प्रथम ग्रंथ है। यह महाराष्ट्री प्राकृत में निबद्ध है। इसका रचनाकाल ईसा की दूसरी शती से पाँचवी शती के मध्य माना जाता है। इसके पश्चात् प्राकृत भाषा के कथा ग्रंथों में संघदासगणि कृत वसुदेवहिण्डी (छठी शती) का क्रम आता

है। इसमें वसुदेव की देशभ्रमण की कथाएँ वर्णित हैं। इन दोनों ग्रंथों में अनेक अवान्तर कथाएँ भी वर्णित हैं। इसके पश्चात् आचार्य हरिभद्र के कथाग्रंथों का क्रम आता है। इनमें 'धूर्ताख्यान' और 'समराइच्चकहा' प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार भद्रेश्वरसूरि की कहावली भी प्राकृत कथा साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। ज्ञातव्य है कि जहाँ विमलसूरि का 'पउमचरियं' पद्य में है वहाँ संघदासगणिकृत 'वसुदेवहिण्डी' और हरिभद्र का 'धूर्ताख्यान' गद्य में है। नौवीं-दशमी शती में शीलांक रचित 'चउप्पणमहापुरिसचरियं' भी प्राकृतभाषा की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसी क्रम में वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि की 'लीलावईकहा' भी प्राकृत भाषा में निबद्ध एक श्रेष्ठ रचना है। प्राकृत भाषा में निबद्ध अन्य चरित काव्यों में 10वीं शती का सुरसुंदरीचरियं, गउडवहो, सेतुबंध, कंसवहो, चन्द्रप्रभ, महत्तरकृत सिरिविजयचंदकेवलचरियं (सं. 1027), देवेन्द्रगणि कृत सुदंसणचरियं, कुम्मापुत्तचरियं, जंबूसामिचरियं, महावीरचरियं (12 वीं शती पूर्वार्ध) गुणपालमुनि कृत गद्यपद्य युक्त जंबूचरिय, नेमीचन्द्रसूरि कृत रयणचूडचरियं, सिरिपासनाहचरियं, लक्ष्मणगणि कृत सुपासनाहचरियं (सभी लगभग 12 वीं शती) इसी कालखण्ड में रामकथा सम्बन्धी दो महत्त्वपूर्ण कृतियाँ भी सृजित हुई थीं यथा- सियाचरियं, रामलखनचरियं। इससे कुछ परवर्तीकाल खण्ड की महेन्द्रसूरि (सन् 1130) कृत नम्मयासुंदरी भी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसी क्रम में 17 वीं शती में भुवनतुंगसूरि ने कुमारपालचरियं की रचना की। इससे ज्ञात होता है कि प्राकृत में काव्य लिखने की यह परम्परा चौथी-पांचवीं शती से लेकर 17 वीं शती तक जीवित रही है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर परम्परा के अन्तर्गत कालक्रम में महाराष्ट्रीप्राकृत में तीर्थंकर चरित्रों पर अनेक ग्रंथ लिखे गये, यथा- आदिनाहचरियं, सुमईनाहचरियं, वसुपुज्जचरियं, अनन्तनाहचरियं, संतिनाहचरियं, मुनिसव्वयसामिचरियं, नेमिनाहचरियं, पासनाहचरियं, महावीरचरियं आदि। शौरसेनी प्राकृत भाषा में चरित्रग्रंथों के लिखने की यह धारा दिगम्बर परम्परा में निरंतर नहीं चली। दिगम्बर परम्परा में चरित्रग्रंथ तो लिखे जाते रहे हैं, किन्तु दिगम्बर आचार्यों ने या तो संस्कृत को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया या फिर अपभ्रंश भाषा को अपनाया। यद्यपि श्वेताम्बर आचार्यों ने परवर्तीकाल में भी अपभ्रंश भाषा में कुछ चरित्रग्रंथ लिखे, किन्तु संख्या की दृष्टि से वे दिगम्बर परम्परा की अपेक्षा अति न्यून ही हैं। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि वैदिक एवं जैन धारा के संस्कृत नाटकों में भी बहुत अंश प्राकृत भाषा में ही होता है। वह भी प्राकृत साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। इसकी चर्चा स्वतंत्र शीर्षक के द्वारा आगे करेंगे।

यद्यपि अपभ्रंश भी प्राकृत भाषा से ही विकसित हुई है, और प्राकृतों तथा आधुनिक उत्तर भारतीय प्रमुख भाषाओं के मध्य योजक भी रही है। इस अपभ्रंश में रचित श्वेताम्बर,

दिगम्बर आचार्यों ने निम्न चरितकाव्य लिखे, यथा- रिट्ठनेमिचरिउ, सिरिवालचरिउ, वड्ढमाणचरिउ, पउमचरिउ, सुदंसणचरिउ, जम्बूसामिचरिउ, णायकुमारचरिउ, पदनयराजचरिउ आदि। सम्भव है कि जैनकथा साहित्य के प्राकृत भाषा में रचित अनेक ग्रंथ मेरी जानकारी में नहीं होने से छूट गये हों, इस हेतु मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

प्राकृत में आगम ग्रंथों, आगमिक व्याख्याओं, आगमिक विषयों एवं उपदेशपरक ग्रंथों के अतिरिक्त भी साहित्य की अन्य विधाओं पर भी ग्रन्थ लिखे गये हैं। प्राकृत के व्याकरण से सम्बन्धित ग्रंथ प्राकृत भाषा में नहीं लिखे गये हैं, वे मूलतः संस्कृत में रचित हैं और संस्कृत भाषा के आधार पर प्राकृत के शब्द रूपों को व्याख्यायित करने का प्रयत्न करते हैं। इनके रचयिता भी जैन और अजैन दोनों ही वर्गों से हैं। इनके ग्रन्थों में वररुचिकृत प्राकृतप्रकाश, मार्कण्डेयरचित प्राकृतसर्वस्व, हेमचन्द्रकृत सिद्धहेम व्याकरण का आठवाँ अध्याय प्रमुख हैं। प्राकृतकोश ग्रंथों में धनपालकृत पाइयलच्छीनाममाला, हेमचन्द्रकृत रयणावली अर्थात् देशीनाममाला प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त भी अभिमानसिंह, गोपाल, देवराज आदि ने भी देश्यशब्दों के कोश ग्रन्थ रचे थे, किन्तु वे आज अनुपलब्ध हैं। इसी प्रकार द्रोण, पादलिप्तसूरि, शीलांक रचित प्राकृत शब्द कोशों के सम्बन्ध में आज विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्राकृत के कोशों में विजयराजेन्द्रसूरिकृत, 'अभिधानराजेन्द्र कोश', शेठहरगोविन्ददासकृत, 'पाइयसद्दमहण्णवो', मुनिरत्नचन्द्रकृत 'अर्धमागधी कोश', पाइयसद्दमहण्णव आधारित के.आर.चन्द्रा का प्राकृत हिन्दी कोश The student's English-paiya Dictionary आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृत शब्द रूपों को लेकर जैन विश्वभारती संस्थान से आचार्य तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ जी के निर्देशन में तैयार निम्न कोश ग्रंथ भी महत्त्वपूर्ण हैं- 1. आगमशब्दकोश, 2. देशीशब्दकोश, 3. निरुक्तकोश, 4. एकार्थककोश, 5. जैन आगम वनस्पतिकोश, 6. जैन आगम प्राणीकोश, 7. श्री भिक्षु आगमकोश भाग 1- 2 आदि।

प्राकृत नाटक

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्राचीन नाटक और सट्टक प्रायः संस्कृत भाषा की रचनाएँ माने जाते हैं। किन्तु संस्कृत नाटकों में प्रायः बहुल अंश प्राकृत का ही होता है, अतः मुख्यता प्राकृतों की होने से उन्हें प्राकृत भाषा की भी रचना माना जा सकता है। ये नाटक भी जैन एवं अजैन दोनों परम्पराओं में लिखे गये हैं। कुछ नाटक ऐसे भी हैं, जो मात्र प्राकृत भाषा में रचित हैं और सट्टक के रूप में जाने जाते हैं, यथा- कप्पूरमंजरी, विलासवई, चंदलोहा, आनन्दसुंदरी, सिंगारमंजरी आदि। जैन नाटककारों में दिगम्बर हस्तिमल प्रसिद्ध हैं। इनके निम्न नाटक उपलब्ध हैं- अंजना पवनंजय, मैथिलीकल्लाण, विक्रान्तकौरव, सुलोचना

और सुभद्राहरण। श्वेताम्बरों में आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने जहाँ एक ओर संस्कृत में नाटय दर्पण ग्रंथ लिखा, वही प्राकृत संस्कृत मिश्रित भाषा में अनेक नाटकों की भी रचना की, यथा- कौमुदीमित्रानन्द, नतविलास, यादवाभ्युदय, रधुविलास, राधवाभ्युदय, वनमाला (नाटिका), सत्यहरिश्चन्द्र। इसके अतिरिक्त अजैन लेखकों द्वारा रचित नाटकों, सट्टकों आदि में प्राकृत के अंश मौजूद हैं।

ज्योतिष

यद्यपि चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति प्राकृत भाषा में रचित ज्योतिष सम्बन्धी प्रमुख आगम ग्रंथ हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त भी जैन परम्परा में अनेक ज्योतिष सम्बन्धी ग्रंथ प्राकृत भाषा में भी रचित हैं, यथा- गणिविज्जा, अंगविज्जा, जोइसकरंडक (ज्योतिषकरण्डक प्रकीर्णक), जोतिस्सार, विवाहमण्डल, लग्गसुद्धि, दिणसुद्धि, गणहरहोरा, जोइसदार, जोइसचक्कवियार, जोइस्सहीर आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनाचार्यों ने प्राकृत भाषा में विपुल ग्रंथों का सर्जन किया था। संस्कृत भाषा में तो उनके अनेक ज्योतिष सम्बन्धी ग्रंथ हैं ही। 'आयनाणतिलय' नामक फलित ज्योतिष का जैन आचार्य वोसरि का भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्राप्त होता है।

निमित्त शास्त्र

निमित्त शास्त्र भी जैनाचार्यों का प्रिय विषय रहा है। 'जयपायड़' इस विषय की प्राकृत भाषा की एक प्रसिद्ध रचना है। इसके अतिरिक्त निमित्तपाहुड, जोणीपाहुड, रिट्ठसम्मुच्चय, साणकय (श्वानकृत), छायादार, नाडीदार, उवस्सुइदार, निमित्तदार, रिट्ठदार, पिपीलिया-नाण, करलक्खण, छींकवियार आदि इस विषय की प्राकृत कृतियाँ है।

इसी प्रकार शिल्पशास्त्र में ठक्करफेरूकृत वत्थुसारपयरण आदि ग्रंथ भी प्राकृत में उपलब्ध हैं। प्राकृत आगम साहित्य में भी जैन खगोल, भूगोल, गणित, चिकित्साशास्त्र, प्राणीविज्ञान आदि से सम्बन्धित विषय वस्तु उपलब्ध है। आज जैनाचार्यों द्वारा प्राकृत भाषा में रचित अनेक ग्रंथ अनुपलब्ध हैं एवं शोध की अपेक्षा रखते हैं। विस्तार भय से मैं अधिक गहराई में न जाकर इस चर्चा को यही विराम दे रहा हूँ। मैंने इस आलेख में प्राकृत भाषा में रचित जैन कृतियों के नाम मात्र दिये हैं। जहाँ तक सम्भव हो सका लेखक और रचनाकाल का भी संकेत मात्र दिया है। ग्रंथ की विषय वस्तु एवं अन्य विशेषताओं की कोई चर्चा नहीं की है। अन्यथा यह आलेख स्वयं एक पुस्तकाकार हो सकता है। यह भी सम्भव है कि मेरी जानकारी के अभाव में कुछ प्राकृत ग्रंथ छूट भी गये हों, एतदर्थ मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। विद्वानों से प्राप्त सूचना पर उन्हें सम्मिलित किया जा सकेगा।

-निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (मध्यप्रदेश)

प्रासंगिक

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में धर्म-विषयक चिन्तन

श्री देवर्षि कलानाथ शास्त्री

यह प्रसन्नता की बात है कि पिछले कुछ समय से विश्वस्तर पर सभी धर्मों के सिद्धान्तों पर, सर्वधर्म समन्वय पर, धर्मों के उपदेशों के युगानुरूप क्रियान्वयन पर संतों में, विद्वानों में, जननेताओं में चर्चा होने लगी है। इसी प्रकार के उद्देश्यों को लेकर पहले भी ऐसी संस्थाएँ विकसित हुई थीं, जिनमें स्वामी विवेकानन्द जैसे मनीषियों ने शिकागो जैसे नगरों में धर्म के उद्देश्यों पर नई राहें दिखाई थीं। 'पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन्स' जैसी संस्थाएँ बेबाक रूप से धर्मों के पारस्परिक संवादों का आयोजन करती हैं। मुझे याद आ रही है ऐसे ही एक परिसंवाद में विश्वस्तरीय मनीषी द्वारा धर्मों के इतिहासों के विश्लेषण के लिए 'वर्ल्ड कान्फरेंस ऑफ रिलीजन्स' द्वारा दी गई एक कसौटी की। उन्होंने कहा था कि विश्व के सारे धर्मों के सिद्धान्त तो अपने आप में सभी पावन हैं, अच्छे हैं, सबमें मानवहित की, परोपकार की, खुदा की खिदमत की बात कही गई है, पर यदि हम केवल सिद्धान्तों को थोड़ी देर दूर रखकर उन धर्मों के अनुयायियों द्वारा धर्म के नाम पर किए गए आचरणों के इतिहास को देखें तो विश्व को उन धर्मों की देन का सच्चा इतिहास ज्ञात हो जाएगा। क्या आपको ज्ञात नहीं है कि अत्यन्त पावन उपदेशों के धनी अनेक धर्मों ने अन्य धर्मों के विनाश के लिए कितने नरसंहार किए हैं, धर्म परिवर्तन के उद्देश्य से कितने निरीहों पर जुल्म ढाए हैं। उन सबसे क्या कोई सीख ली जा सकती है? एक सरल हृदय प्रेक्षक की उर्दू में इस प्रसंग में कही गई उक्ति मुझे याद आ रही है-

खुदा के बन्दों को देखकर ही खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया।
कि जिस खुदा के हों ऐसे बन्दे, वो कोई अच्छा खुदा नहीं है।।

इसी दृष्टि से भारत में विकसित और उद्भूत किसी भी धर्म ने धर्मपरिवर्तन के लिए कोई प्रयास, कोई अत्याचार किये हों, इसका इतिहास आपको शायद ही मिले। सनातन, जैन, बौद्ध सभी धर्मों में सिद्धान्त भी पावन हैं, क्रियान्वयन भी।

हमारे धर्मों में एक यह दृष्टि भी सदा से पनपी है कि धर्म के सिद्धान्त, धर्म का मूल तो शाश्वत है, सार्वकालिक और सार्वदेशिक है, किन्तु उसका आचरण, उसका आचार देश और काल के अनुरूप बदल सकता है, बदलना चाहिए। गीता का यह संदेश-"संभवामि युगे-युगे" इस बात का भी संकेत देता है कि ईश्वर युगानुरूप धर्माचरण के तौर-तरीके

बदलने का स्वयं अधिकार देता है। सनातन धर्म में अनेक ऐसे कृत्य, यज्ञ-याग, भोजन प्रथाएँ स्पष्ट की गई हैं, जो एक युग में तो उचित रही हैं, संभव रही हैं, युग बदलने पर वे बदल सकती हैं, बदल जाती हैं। आज अश्वमेध यज्ञ के लिए विश्व में घोड़ा घुमाकर उसकी आहुति देने का कृत्य क्या उचित होगा? स्वयं धर्मशास्त्र ऐसे आचारों को युगानुरूप बदलने का आदेश देते हैं। जिस प्रकार एलोपैथी की दवाओं पर ''डेट ऑफ एक्सपायरी'' लिखी होती है, उसी प्रकार धर्मशास्त्र भी अनेक प्रथाओं पर 'एक्सपायरी डेट' स्वयं लिख चुके हैं। यह जानकर आपको आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं। इस एक्सपायरी डेट का एक नाम धर्मशास्त्र में 'कलिवर्ज्य' प्रकरण है, जो बतलाता है कि कलियुग के आने के बाद स्थितियों के परिवर्तन के फलस्वरूप कौन-कौन से धार्मिक आचार बन्द होंगे या परिवर्तित होंगे।

भारत के धर्मों की एक विशेषता यह भी है कि उनमें धर्म सिद्धान्तों पर निरन्तर चर्चा, वाद-विवाद, खंडन-मंडन आदि होते रहे हैं। यहाँ का नारा है ''वादे-वादे जायते, तत्त्वबोधः''। हर धर्म सिद्धान्त को दर्शन की, शास्त्रार्थ की कसौटी पर परखो, आलोचना से मत डरो। ऐसे फतवे मत दो कि किसी ने तर्क से हमारी मान्यता का खंडन कर दिया तो उसका सिर कलम कर दिया जाए तो उससे पुण्य मिलेगा। आपको यह जानकर भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि हमारे दर्शनों में आधे दर्शन ईश्वर को नहीं मानते- वे ''निरीश्वर दर्शन'' कहलाते हैं। चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि दर्शन नहीं मानते कि ऊपर कोई ईश्वर बैठा है जिसने सारी सृष्टि बनाई है और हमारी मृत्यु के बाद हम उसके सामने जाएँगे तो वह न्याय करेगा कि हमें स्वर्ग मिले या नरक। जैनदर्शन कर्म सिद्धान्त पर आधारित है और मानता है कि मानव स्वयं कर्मबन्धन से मुक्त होने पर उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है। वह ऊपर से आने वाली किसी शक्ति की पूजा नहीं करता, अपने आपमें वैसी शक्ति विकसित करने का सिद्धान्त समझाता है। यही कारण है कि जैन सिद्धान्तों में ज्योतिष का शास्त्र कुछ अलग है। जैन ज्योतिष में वैसा 'फलित' शास्त्र अमान्य है जो यह फैलाता हो कि अमुक ग्रह के कारण मनुष्य को मृत्यु या बीमारी, मोक्ष या सिद्धि मिलेगी, अतः उसकी पूजा करो। जैनों में कभी आपको भूत-प्रेतों के टोने-टोटके बतलाने वाले ओझा या जादूगर नहीं मिलेंगे। वहाँ न तो भूत हैं, न डाकनें। यह सब हमारे धर्म और दर्शन के कुछ आयाम स्पष्ट करते हैं।

भारतीय धर्म परम्पराओं पर आस्था रखने वाला यह जैन धर्म स्पष्ट करता है कि जो परम्पराएँ विकृत रूढ़ियों में परिवर्तित हो जाएँ, उन रूढ़ियों को तोड़ना गलत नहीं होगा। कौन नहीं जानता कि शताब्दियों से हमारे यहाँ मूर्तिपूजा चल रही थी। उसका उद्देश्य पावन था, महनीय था, किन्तु यदि वह ऐसा रूप ले ले कि जहाँ एक गरीब के बच्चे दूध की बूँदों के लिए तरस रहे हों वहाँ आप मनों दूध मूर्ति पूजा-परम्परा में किसी पत्थर पर दुग्धाभिषेक के

नाम पर या पहाड़ पर उसे पूजने के नाम पर व्यर्थ बहा रहे हों तो अवश्य ही कोई स्वामी दयानन्द पैदा होगा जो मूर्ति पूजा की रूढ़ियों का विरोध करेगा। हमारे सहस्राब्दियों पुराने धर्मों की यही तो महिमा है कि वे काल की कसौटी पर सदा से कसे जाते रहे हैं, माँजे और चमकाए जाते रहे हैं, हम भाग्यशाली हैं कि भारत में हम ऐसे महनीय धर्मों की सुदीर्घ विरासत के वारिस हैं। *-सी/8, पृथ्वीराज रोड़, सी.स्कीम, जयपुर-302001 (राज.)*

विरोधी भी बनते हैं मित्र

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

मेरे विरोधी पहले भी थे और आज भी हैं, लेकिन मुझे उनके प्रति रोष नहीं हुआ। स्वप्न में भी मैंने उनका बुरा नहीं चाहा। परिणामस्वरूप बहुत से विरोधी मेरे मित्र बन गये हैं। किसी का भी विरोध मेरे सामने आज तक काम नहीं कर सका। तीन बार तो मुझ पर हमले हुए, फिर भी आज तक मैं जिंदा हूँ। इसका यह अर्थ नहीं कि विरोधी कभी भी अपनी सोची हुई सफलता प्राप्त नहीं करेंगे। प्राप्त करें या न करें, इसके साथ मेरा संबंध नहीं है। मेरा धर्म उनका भी हित चाहना है और मौका आने पर उनकी भी सेवा करना है। इस सिद्धान्त पर मैंने यथाशक्ति अमल किया है। मैं यह मानता हूँ कि यह चीज मेरे स्वभाव में रही है।

लाखों लोग मेरी पूजा करते हैं, तब मुझे थकान लगती है। किसी भी दिन इस पूजा में मुझे रस नहीं आया या ऐसा नहीं लगा कि मैं उस पूजा के योग्य हूँ। हमेशा मुझे मेरी अयोग्यता का ही भान रहा है। मान-सम्मान की भूख मुझे कभी रही हो, ऐसा याद नहीं आता। लेकिन काम की भूख रही है। मान देने वाले से मैंने काम लेने का प्रयत्न किया है और जब उसने काम नहीं किया तो मैं उसके मान से दूर भागा हूँ। मैं कृतार्थ तो तब होऊँगा, जबकि जहाँ मुझे पहुँचना है, वहाँ पहुँच जाऊँ।

दुनिया के विरुद्ध खड़े रहने की शक्ति प्राप्त करने के लिए अभिमान या उद्धतता पैदा करने की जरूरत नहीं है। ईसा दुनिया के विरोध में खड़े रहे, बुद्ध ने भी अपने युग का विरोध किया, प्रह्लाद ने भी वैसा ही किया। वे सब नम्रता की मूर्ति थे। इसके लिए आत्मविश्वास और प्रभु पर श्रद्धा की जरूरत है। अभिमानी बनकर दुनिया के विरुद्ध खड़े रहने वालों का अंत में पतन हुआ है। ऐसा न हो, इसके लिए मनुष्य को बहुत सावधानी से चलने की जरूरत है। मैं मानता हूँ कि अत्यधिक नम्रता के बिना अंत तक अकेले टिके रहने की शक्ति प्राप्त होना असंभव है। यह शक्ति आ गयी हो तो ही वह सच्ची जीत मानी जाएगी। उसकी परीक्षा इसी में होती है। *-सत्याग्रह मीमांसा, अगस्त-2006 से साभार*

शोधालेख

पंच समवाय सिद्धान्त : एक समीक्षा (5)

डॉ. श्वेता जैन

पंच कारण समवाय में गौण-प्रधान भाव

यद्यपि जैनाचार्यों ने काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म एवं पुरुषार्थ को पंच कारण समवाय में समान रूप से स्थान दिया है, किन्तु इनमें कभी काल की प्रधानता हो सकती है तथा अन्य कारण गौण रूप में सहयोगी हो सकते हैं। इसी प्रकार कहीं स्वभाव की, कहीं नियति की, कहीं पूर्वकृत कर्म की और कहीं पुरुषार्थ की प्रधानता तथा शेष अन्य कारणों की गौण रूप में सहयोगिता संभव है। विवक्षा से भी इनमें गौण प्रधान भाव कहा जा सकता है। कहीं ये एक-दूसरे से एक साथ इस प्रकार मिले रहते हैं कि उनकी गौणता या प्रधानता पर ध्यान ही नहीं जाता। जब काल को कारण कहा जाता है तब मात्र काल कारण नहीं होता उसके साथ अन्य कारणों का योग भी स्वत: बन जाता है। ज्योतिर्विद् जब किसी कार्य का मुहूर्त निकालता है तो उसमें काल की प्रधानता ज्ञात होती है, किन्तु व्यक्ति का पुरुषार्थ, पूर्वकृत कर्म-फल का उदय, व्यक्ति का स्वभाव तथा कार्य की भवितव्यता का भी योग रहता है। यदि भवितव्यता न हो तो वह कार्य सम्पन्न नहीं होता है। उदाहरण के लिए राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र का राज्याभिषेक करने के लिए ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाया। अन्य सब प्रयास भी हुए, किन्तु भवितव्यता का योग नहीं था, तो उन्हें वनवास जाना पड़ा। यहाँ भवितव्यता की प्रधानता स्वीकार की जा सकती है। खेतों में काल के कारण फसल पक गई हो, अपने बीज के स्वभाव के अनुरूप फसल (गेहूँ, बाजरा, जवार आदि) पकी हो, किसान के पूर्वकृत कर्मो के उदय से उसे फसल का लाभ भी मिलने वाला हो तथा नियति भी अनुकूल हो, किन्तु किसान यदि फसल को काटने के समय पर पुरुषार्थ न करे तो उसे फसल पकने का लाभ नहीं मिल सकता। इस उदाहरण में पुरुषार्थ की प्रधानता विदित होती है। फसल के पकने के पूर्व भी हल जोतने, बीज डालने, जल से सींचने, निराई करने, पशुओं से रक्षा करने आदि में भी किसान का पुरुषार्थ रहता है। किन्तु किसान का भाग्य काम न करे तो किसी भी कारण से फसल चौपट हो सकती है। ऋतुओं के संचालन, वस्तुओं के परिणमन आदि में काल की प्रधानता हो सकती है, किन्तु वहाँ नियति ही काम करती है। निश्चित नियम या क्रम से ऋतु परिवर्तन, पेड़-पौधों का विकास, मनुष्य का विकास आदि कार्य हुआ करते हैं। गृहिणियाँ घर में दूध जमाती हैं तब वे निश्चित

समय पर दूध की कवोष्णता, बाहरी वातावरण आदि को देखकर जामण डालती हैं। यदि समय पर जामण न डाला जाए तो दूध से दही सही नहीं जमता। रसोई के प्रत्येक कार्य में गृहिणियों को वस्तु के स्वभाव के अनुसार काल को ध्यान में रखकर पुरुषार्थ करना होता है। प्रधानता से भले ही पुरुषार्थ को कारण कहा जाए, किन्तु काल, वस्तु के स्वभाव आदि की कारणता का प्रतिषेध नहीं किया जा सकता।

जैन दार्शनिकों ने अपनी अनेकान्तवादी दृष्टि के कारण पाँच कारणों के समवाय को स्वीकार तो किया है, किन्तु उनके गौण-प्रधान भाव या उनसे कार्य परिणति के उदाहरणों के रूप में उनकी समरूपता को व्याख्यायित करने का प्रयास नहीं किया। जब व्यक्ति के द्वारा पुरुषार्थ करने पर भी सफलता नहीं मिलती है तब वे काल आदि अन्य कारणों को भी प्रस्तुत कर देते हैं।

हरिभद्रसूरि कहते हैं कि दैव एवं पुरुषार्थ दोनों से मिलकर कार्य सम्पन्न होता है। किन्तु जब फल की प्राप्ति पूर्वोपार्जित कर्म की उदग्रता एवं पुरुषार्थ की अल्पता से हो जाती है तब उसे लोक में दैव से सम्पन्न कार्य कहा जाता है तथा इसके विपरीत पुरुषार्थ की अधिकता एवं दैव की अनुदग्रता से कार्य सम्पन्न होता है तो उस कार्य को पुरुषकार से सम्पन्न माना जाता है-

जमुदग्गं थेवेणं कम्मं परिणमइ इह पयासेण।
तं दइवं विवरीयं तु पुरिसगारो मुणेयव्वो।।

दुःखमुक्ति की साधना में पूर्वबद्ध कर्मो के क्षय एवं नवीन कर्मो के निरोध में जीव के पुरुषार्थ की प्रधानता अंगीकार की जा सकती है। यदि जीव कुछ न कर सके तो तीर्थंकरों के उपदेश का भी औचित्य सिद्ध नहीं होता। संयम, तप और त्याग से युक्त जैन परम्परा में आत्म-पुरुषार्थ का महत्त्व निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है।

पंच कारणों की न्यूनाधिकता

जैन दार्शनिकों ने काल, स्वभाव आदि पाँच कारणों को अवश्य स्वीकार किया है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक कार्य की सिद्धि में पाँचों कारण अपेक्षित हों। ये पाँचों कारण तो जीव में घटित होने वाले कार्यो की दृष्टि से कहे गए हैं। अजीव पदार्थो में घटित होने वाले कार्यो में पूर्वकृत कर्म और पुरुषार्थ का होना आवश्यक प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि अजीव पदार्थो का अपना कोई पूर्वकृत कर्म नहीं होता है और वे स्वयं पुरुषार्थ करने में भी समर्थ नहीं होते हैं। मनुष्यादि जीवों के पूर्वकृत कर्म और पुरुषार्थ का संबंध कभी-कभी अजीव पदार्थो में होने वाले कार्यो से जोड़ा जा सकता है। किन्तु उन अजीव पदार्थो का न तो कोई अपना भाग्य होता है और न ही पुरुषार्थ। मिट्टी से जब घट बनता है

तो मिट्टी के स्वभाव के अनुसार काल और नियति की अपेक्षा रखकर घट बनता है। मिट्टी स्वयं कोई पुरुषार्थ नहीं करती, पुरुषार्थ तो कुम्भकार करता है जो चाक आदि उपकरणों का सहयोग लेकर मिट्टी को एक आकार प्रदान करता है। घट का निर्माण होने पर कुम्भकार का ही भाग्योदय माना जाता है। इसलिए परिणमन जैन दर्शन में दो प्रकार का माना गया है-1. विस्रसा परिणमन, 2. प्रयोग परिणमन। बिना किसी के पुरुषार्थ के स्वभावत: धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल में तथा मुक्त जीवों में विस्रसा अर्थात् स्वभावत: परिणमन होता है। प्रयोग परिणमन में जीव का पुरुषार्थ कारण बनता है, जैसे भोजन से रक्त, अस्थि, मज्जा आदि का निर्माण भोजन का प्रयोग-परिणमन है।

पाँच कारण सर्वत्र घटित होते हों यह अनिवार्य नहीं है, इसकी पुष्टि आचार्य महाप्रज्ञ ने इन शब्दों में की है-"समवाय के पाँचों तत्त्वों को एक साथ घटित करना कोई अनिवार्यता नहीं होनी चाहिए। कहीं पाँचों तत्त्व एक साथ घटित हो सकते हैं। कहीं उनमें से एक, दो अथवा तीन घटित हो सकते हैं। निमित्त अनेक हैं। एक घटना में सब निमित्त समवेत हों, यह आवश्यक नहीं।"

पंच कारण परस्पर प्रतिबंधक नहीं

यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या काल आदि कारण परस्पर एक-दूसरे के प्रतिबंधक होते हैं? उदाहरण के लिए क्या नियति पुरुषार्थ का प्रतिबंधक हो सकती है? क्या पुरुषार्थ नियति का प्रतिबंधक हो सकता है? क्या पूर्वकृत कर्म पुरुषार्थ में बाधक बन सकता है? क्या पुरुषार्थ भाग्य को परिवर्तित कर सकता है? क्या पुरुषार्थ द्वारा काल और स्वभाव में प्रतिबंधकता उत्पन्न की जा सकती है। इस प्रकार बहुत से प्रश्न खड़े होते हैं। इन प्रश्नों का एक ही समाधान है कि ये परस्पर प्रतिबंधक प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में इनका परस्पर समन्वय है। इनके समन्वय से कार्य की सिद्धि होती है। जब तक समन्वय नहीं होता तब तक कार्य की उत्पत्ति में उन्हें असाधक या प्रतिबंधक कहा जा सकता है। इनकी परस्पर प्रतिबंधकता कहीं-कहीं उल्लिखित भी हुई है, जैसे- कहीं जीव कर्म के वश होता है और कहीं कर्म जीव के आधीन होते हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि जीव का पुरुषार्थ उसकी प्राप्त योग्यता के अनुसार होता है। पूर्वकृत कर्मों के द्वारा उसकी योग्यता का निर्धारण होता है।

पुरुषार्थ की सफलता अन्य कारणों के उपस्थित रहने पर होती है। इस तथ्य को योगबिन्दु में हरिभद्रसूरि ने अभिव्यक्त किया है-

अस्मिन् पुरुषकारोऽपि सत्येव सफलो भवेत्।
अन्यथा न्यायवैगुण्याद् भवन्नपि न शस्यते।।

पुरुषार्थ भी तभी सफल होता है, जब वह आत्मा, कर्म आदि के स्वभाव के अनुरूप हो। वस्तु स्वभाव के विपरीत होने से पुरुषार्थ की कार्यकारिता सिद्ध नहीं होती। अतः मात्र पुरुषार्थ को प्रशस्त नहीं माना जा सकता।

पूर्वकृत कर्म (भाग्य) और पुरुषार्थ परस्पर मिलकर कार्य करते हैं। हरिभद्रसूरि ने शुभाशुभ कर्म को दैव या भाग्य कहा है तथा अपने वर्तमान कर्म व्यापार को पुरुषार्थ कहा है। व्यावहारिक दृष्टि से दैव और पुरुषार्थ में अन्योन्याश्रय देखा जाता है। जो व्यक्ति संसार में है उसका पूर्वसंचित कर्म के बिना जीवन व्यापार नहीं चलता और जब तक वह कार्य व्यापार में संलग्न नहीं होता तब तक संचित कर्म का फल प्रकट नहीं होता-

न भवत्यस्य यत् कर्म विना व्यापारसंभवः।
न च व्यापारशून्यस्य फलं स्यात् कर्मणोऽपि हि।।

पूर्व कर्मों के शुभ होने से व्यक्ति के मन में शुभ भाव उत्पन्न होता है तथा वर्तमान में जिस प्रकार के कर्म किये जाते हैं कालान्तर में व्यक्ति का वैसा ही स्वभाव होता है। योगबिन्दु में हरिभद्रसूरि ने इसी तथ्य को प्रकट किया है-

शुभात् ततस्त्वसौ भावो हन्ताऽयं तत्स्वभावभाक्।
एवं किमत्र सिद्धं स्यात् तत एवास्त्वतो ह्यदः।।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कालादि पाँच कारण कभी-कभी एक दूसरे के प्रतिबंधक रूप में प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में वे एक दूसरे के पूरक हैं।

पंच समवाय : अनेकान्तवादी दृष्टि का परिणाम

जैन दर्शन में पंच समवाय का सिद्धान्त जैन दार्शनिकों की अनेकान्तवादी दृष्टि का परिणाम है। जैन दर्शन में पहले से ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव की कारणता मान्य रही है, किन्तु उस समय प्रचलित सृष्टि विषयक कार्य-कारण की जिन अवधारणाओं का जैन दर्शन में अविरोध रूप से स्वीकार हो सकता था, उनका जैन दार्शनिकों ने पंच कारण-समवाय में समावेश करते हुए काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म और पुरुषार्थ को कारण के रूप में अंगीकृत किया है। जैन दार्शनिकों ने जिस प्रकार एकान्त नित्यता और एकान्त अनित्यता का निरसन करते हुए वस्तु को नित्यानित्यात्मक प्रतिपादित किया है उसी प्रकार काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म तथा पुरुषार्थ की पृथक्-पृथक् एकान्त कारणता को मिथ्यात्व और इनके सामासिक या समन्वयात्मक रूप को सम्यक् प्रतिपादित किया है। इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि जैन दार्शनिक इन सभी कारणों को जैन दर्शन में स्वीकार करते हैं। जैन दर्शन में काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म, पुरुष/पुरुषार्थ की कथंचित् कारणता स्वीकृत है। इसलिए इन सब कारणों के समन्वित रूप को सम्यक्त्व कहने में कोई

हानि नहीं है। किन्तु इससे यह पुष्ट नहीं होता है कि इनमें से किसी कारण के न रहने पर कार्य की सिद्धि नहीं होगी।

कार्य की सिद्धि इन पाँच कारणों में कदाचित् किसी के न्यून होने पर भी हो सकती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पंच समवाय सिद्धान्त की मान्यता के पीछे जैन दार्शनिकों की अनेकान्तवाद की दृष्टि ही प्रमुख कारण रही है।

निष्कर्ष

जैन दर्शन की अनेकान्तवादी नय दृष्टि का ही परिणाम है कि इसमें पंच कारण समवाय सिद्धान्त को स्थान मिला। इसके पूर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव की कारणता जैन वाङ्मय में प्रतिपादित रही है। आगे चलकर निमित्त और उपादान की दृष्टि से भी कारण-कार्य का विचार हुआ। जैन दर्शन के कारण-कार्य सिद्धान्त को सदसत्कार्यवाद नाम से जाना गया है।

सिद्धसेन दिवाकर ने काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म और पुरुष/पुरुषकार में से एक-एक की कारणता को मिथ्यात्व तथा सबके सामासिक या समन्वित स्वरूप को सम्यक्त्व कहा। उनके अनन्तर हरिभद्रसूरि, शीलांकाचार्य, अभयदेवसूरि, मल्लधारी राजशेखरसूरि, यशोविजय, उपाध्याय विनयविजय आदि ने पंच समवाय के प्रतिष्ठापन में अपना योगदान दिया। उनके अनन्तर तिलोकऋषि जी, शतावधानी रत्नचन्द्र जी महाराज, कानजी स्वामी आदि ने पंच समवाय को प्रतिष्ठित करने में अपनी भूमिका का निर्वाह किया।

इसमें संदेह नहीं कि जैन दर्शन में काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म और पुरुषार्थ की कारणता अंगीकृत है। इनमें एक-एक को प्रधान बनाकर भी कारणता का प्रतिपादन संभव है। यह आवश्यक नहीं है कि सदैव एक साथ पाँच कारण उपस्थित हों, पाँचों कारण तो जीव में घटित होने वाले कार्यों में ही होते हैं, अजीव पदार्थों में सम्पन्न होने वाले कार्यों में न तो पूर्वकृत कर्म कारण होता है और न ही उनका अपना पुरुषार्थ। उपचार से जीव के पूर्वकृत कर्मों एवं पुरुषार्थ को कथंचित् कारण माना जा सकता है। पुद्गल के प्रयोग-परिणमन में तो जीव का पुरुषार्थ कारण बनता भी है। ये पाँच कारण परस्पर एक-दूसरे के प्रतिबन्धक नहीं होते हैं। इनमें परस्पर समन्वय से कार्य की सिद्धि होती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि पंच समवाय का सिद्धान्त जैनदर्शन की अनेकान्तवादी या नयवादी दृष्टि का परिणाम है तथा यह जैनागमों की मूल मान्यता से अविरोध रखता है। **(समाप्त)**

-अतिथि व्याख्याता, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

शोधालेख

केवलज्ञान के लिए प्रयुक्त विशेषण

श्री पवनकुमार जैन

केवलज्ञान सभी ज्ञानों का चरमोत्कर्ष है। केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद ही आत्मा सम्पूर्ण रूप से अनावृत्त होती है, एवं स्वभाव में रमण कर शुद्ध चैतन्य की अनुभूति करते हुए सिद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार एवं निर्विकार अवस्था को प्राप्त करती है अर्थात् स्व स्वरूप में स्थित होती है।

प्राचीन काल में सर्वोच्च ज्ञान के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ, उन्हीं शब्दों में से 'केवल' शब्द धीरे-धीर सर्वोच्चतम ज्ञान के लिए स्थिर हो गया। आगमों में 'केवल' शब्द मात्र केवलज्ञानी के लिए ही प्रयोग नहीं हुआ है, बल्कि अवधिज्ञानी केवली, मन:पर्यवज्ञान केवली और केवलज्ञान केवली के लिए भी केवल शब्द का उल्लेख आगमों में मिलता है।[1] अथवा यह भी संभव हो सकता है कि कालक्रम से अवधि और मन:पर्यव शब्द तो उस ज्ञान के लिए स्थिर हो गये और केवली शब्द केवलज्ञानी के लिए स्थिर हो गया।

केवलज्ञान का लक्षण-श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में केवलज्ञान की सत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। दोनों परम्पराओं के आचार्यों ने केवलज्ञान को परिभाषित किया है, जो निम्न प्रकार से है-

श्वेताम्बर आचार्यों की दृष्टि में केवलज्ञान का लक्षण-

1. **आचार्य भद्रबाहु** ने आवश्यकनिर्युक्ति में कहा है कि सभी द्रव्यादि के परिणाम की सत्ता को विशेष जानने के कारण अनन्त, शाश्वत, अप्रतिपाती और एक प्रकार का जो ज्ञान है, वह केवलज्ञान है।[2]
2. **नंदीसूत्र** के अनुसार जो ज्ञान असहाय, शुद्ध, संपूर्ण, असाधारण और अनंत इन पांच विशेषणों से युक्त है, वह केवलज्ञान है।[3]
3. **जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण (7 वीं शताब्दी)** के मन्तव्यानुसार शुद्ध, परिपूर्ण, असाधारण व अनंत, ऐसा जो ज्ञान है उसे केवल ज्ञान कहा जाता है।[4] अर्थात् पर्याय अनन्त होने से केवलज्ञान अनन्त है। सदा उपयोगयुक्त होने से वह शाश्वत है। इसका व्यय नहीं होता, इसलिए अप्रतिपाति है। आवरण की पूर्ण शुद्धि के कारण वह एक प्रकार का है।[5]

मलधारी हेमचन्द्र ने इनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से किया है- 1. केवलज्ञान मति आदि ज्ञानों से निरपेक्ष है, इसलिए असहाय है। 2. वह निरावरण है, इसलिए शुद्ध है। 3. अशेष आवरण की क्षीणता के कारण प्रथम क्षण में ही पूर्णरूप में उत्पन्न होता है, इसलिए वह सकल-सम्पूर्ण है। 4. वह अन्य ज्ञानों के सदृश नहीं है, इसलिए असाधारण है। 5. ज्ञेय अनन्त है, इसलिए वह अनन्त है।[6]

4. नंदीचूर्णि में **जिनदासगणि** (7 वीं शताब्दी) ने वर्णन किया है कि जो मूर्त और अमूर्त सब द्रव्यों को सर्वथा, सर्वत्र और सर्वकाल में जानता-देखता है, वह केवलज्ञान है।[7]
5. **वादिदेवसूरि (12 वीं शताब्दी)** ने प्रमाणनयतत्त्वालोक में उल्लेख किया है कि सम्यग्दर्शन आदि अन्तरंग सामग्री और तपश्चर्या आदि बाह्य सामग्री से समस्त घाति कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाला तथा समस्त द्रव्यों और समस्त पर्यायों को प्रत्यक्ष करने वाला केवलज्ञान सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहलाता है।[8]
6. **तत्त्वार्थभाष्य के टीकाकार सिद्धसेनगणि के अनुसार-** केवल अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञेय को जानने वाला ज्ञान केवलज्ञान है। वह समस्त द्रव्यों एवं उनकी पर्यायों को परिच्छेदन करता है, अथवा मति आदि ज्ञानों से रहित ज्ञानावरण कर्म के पूर्ण क्षय से उत्पन्न एक मात्र ज्ञान केवलज्ञान है। दूसरे कोई भेद-प्रभेद नहीं होते हैं।[9]
7. **आचार्य हेमचन्द्र (12वीं शताब्दी)** के कथनानुसार आवरणों का सर्वथा क्षय हो जाने पर चेतन आत्मा का स्वरूप प्रकट हो जाना, मुख्य प्रत्यक्ष है।[10]
8. **विशेषावश्यकभाष्य के टीकाकार मलधारी हेमचन्द्र (12वीं शताब्दी)** ने उल्लेख किया है कि जिस ज्ञान से जीवादि सभी द्रव्यों को तथा प्रयोग, स्वभाव और विस्रसा परिणाम रूप उत्पाद आदि सभी पर्यायों से युक्त सत्ता को विशेष प्रकार से जाना जाता है एवं भेद बिना भी सभी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को अस्ति रूप से जाना जाता है, वह केवलज्ञान है।[11]
9. **उपाध्याय यशोविजयजी (18वीं शताब्दी)** के ज्ञानबिन्दुप्रकरण के मन्तव्यानुसार जो आत्ममात्र सापेक्ष है, बाह्य साधन निरपेक्ष है, सब पदार्थों को अर्थात् त्रैकालिक द्रव्य पर्यायों को साक्षात् विषय करता है, वही केवलज्ञान है।[12]
10. **घासीलालजी महाराज** के अनुसार जिस ज्ञान में ज्ञानावरणीय कर्म का समूल क्षय होता हैं। भूत, भविष्यत एवं वर्तमान काल के समस्त पदार्थ जिसमें हस्तामलकवत् प्रतिबिम्बित होते रहते हैं तथा जो मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानों से निरपेक्ष रहता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।[13]

दिगम्बर आचार्यों की दृष्टि में केवलज्ञान का लक्षण –

1. **आचार्य कुन्दकुन्द (2–3 री शताब्दी)** के प्रवचनसार में कहा गया है कि जो ज्ञान प्रदेश रहित (कालाणु तथा परमाणुओं) को, प्रदेश सहित (पंचास्तिकायों) को, मूर्त और अमूर्त तथा शुद्ध जीवादिक द्रव्यों को, अनागत पर्यायों को और अतीत पर्यायों को जानता है, उस ज्ञान को अतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं।[14] आचार्य कुंदकुंद नियमसार में कहते हैं कि केवलज्ञान का लक्षण व्यवहारनय और निश्चयनय की दृष्टि से भी किया गया है– व्यवहारनय से केवली भगवान् सबको जानते हैं और देखते हैं। निश्चयनय से केवलज्ञानी अपनी आत्मा को जानते हैं और देखते हैं।[15] जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान स्व–पर प्रकाशक है। वह स्वप्रकाशी है, इस आधार पर केवलज्ञानी निश्चयनय से आत्मा को जानता देखता है, यह लक्षण संगत है। वह परप्रकाशी है, इस आधार पर वह सबको जानता–देखता है, यह लक्षण व्यवहार नय से संगत है।
2. कसायपाहुड के कर्त्ता **आचार्य गुणधरानुसार (2–3री शताब्दी)** असहाय ज्ञान को केवल ज्ञान कहते हैं, क्योंकि वह इन्द्रिय, प्रकाश और मनस्कार अर्थात् मनोव्यापार की अपेक्षा से रहित है। अथवा केवलज्ञान आत्मा और अर्थ से अतिरिक्त किसी इन्द्रियादिक सहायक की अपेक्षा से रहित है, इसलिए भी वह केवल अर्थात् असहाय है। इस प्रकार केवल अर्थात् असहाय जो ज्ञान है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।[16]
3. **आचार्य भूतबलि–पुष्पदंत (2–3 री शताब्दी)** के अनुसार वह केवलज्ञान सकल है, संपूर्ण है और असपत्न है।[17]
4. **अमृतचन्द्रसूरि** ने तत्वार्थसार में कहा है कि जो ज्ञान किसी बाह्य पदार्थ की सहायता से रहित, आत्मस्वरूप से उत्पन्न हो, आवरण से रहित हो, क्रम रहित हो, घाती कर्मों के क्षय से उत्पन्न हो तथा समस्त पदार्थों को जानने वाला हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं।[18]
5. **पूज्यपाद (5–6ठी शताब्दी)** के अनुसार अर्थीजन जिसके लिए बाह्य और आभ्यंतर तप के द्वारा मोक्ष मार्ग का सेवन करते हैं, वह केवलज्ञान कहलाता है।[19]
6. **अकलंक (8वीं शताब्दी)** के कथनानुसार जिसके लिए बाह्य और आभ्यंतर विविध प्रकार के तप किये जाते हैं, वह लक्ष्यभूत केवलज्ञान है। यहां केवल शब्द असहाय अर्थ में है। जैसे केवल अन्न खाता है अर्थात् शाक आदि रहित अन्न खाता है, उसी तरह केवल अर्थात् क्षायोपशमिक आदि ज्ञानों की सहायता से रहित असहाय केवलज्ञान है। यह रूढ़ शब्द है।[20]

7. **आचार्य शुभचन्द्र** के ज्ञानार्णव के अनुसार जो ज्ञान समस्त द्रव्यों और उनकी सभी पर्यायों को जानने वाला है, समस्त जगत् को देखने का नेत्र है तथा अनंत है, एक और अतीन्द्रिय है अर्थात् मतिश्रुत ज्ञान के समान इन्द्रियजनित नहीं है, केवल आत्मा से ही जानता है, उसे जिनभगवान् ने केवलज्ञान कहा है।[21]
8. **वीरसेनाचार्य (9वीं शताब्दी)** धवला टीका में कहते हैं- 1. जो ज्ञान असहाय अर्थात् इन्द्रिय और आलोक की अपेक्षा रहित है, त्रिकालगोचर अनंत पर्यायों से समवायसंबंध को प्राप्त अनंत वस्तुओं को जानने वाला है, सर्वव्यापक (असंकुटित) है और असपत्न (प्रतिपक्षी रहित) है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।[22]

   2. जो मात्र आत्मा और अर्थ के संनिधान से उत्पन्न होता है, जो त्रिकालगोचर समस्त द्रव्यों और पर्यायों को विषय करता है, जो करण, क्रम और व्यवधान से रहित है, सकल प्रमेयों के द्वारा जिसकी मर्यादा नहीं पाई जा सकती, जो प्रत्यक्ष एवं विनाश रहित है, वह केवलज्ञान है।[23]
9. गोम्मटसार में **नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (11वीं शताब्दी)** ने उल्लेख किया है कि केवलज्ञान, संपूर्ण, समग्र, केवल, प्रतिपक्ष रहित, सर्वपदार्थ गत और लोकालोक में अंधकार रहित है अर्थात् केवल ज्ञान समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है।[24] पंचसंग्रह में भी यही परिभाषा मिलती है।[25]
10. **कर्मप्रकृति (अभयचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती)** के अनुसार इन्द्रिय, प्रकाश और मन की सहायता के बिना त्रिकाल गोचर लोक तथा अलोक के समस्त पदार्थों का एक साथ अवभास (ज्ञान) केवलज्ञान है।[26]

केवलज्ञान के उपर्युक्त विभिन्न लक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी ग्रंथकारों, सूत्रकारों ने आवरण क्षय से होने वाले केवलज्ञान को एक, शुद्ध, असाधारण, शाश्वत, अप्रतिपाती, अनंत, विशुद्ध एवं समग्र इत्यादि रूप में स्वीकार किया है।

केवलज्ञान को परिभाषित करने में प्रयुक्त विशेषणों का अर्थ-

दोनों परम्पराओं के आचार्यों ने केवलज्ञान को परिभाषित करते हुए केवलज्ञान के लिए विभिन्न विशेषणों का प्रयोग किया है, यथा परिपूर्ण, समग्र, असाधारण, निरपेक्ष, विशुद्ध, सर्वभाव प्रज्ञापक, संपूर्ण लोकालोक प्रकाशक, अनंत पर्याय इत्यादि, जिनका अर्थ निम्न प्रकार से है-

1. **परिपूर्ण-** केवलज्ञान सभी द्रव्य और उसकी त्रिकालवर्ती पर्यायों को जानता है, इसलिए यह ज्ञान परिपूर्ण कहलाता है। सभी जानने योग्य पदार्थों को जानने वाला होने

से परिपूर्ण है।[27]

2. **समग्र (सम्पूर्ण)**– जो ज्ञान संपूर्ण होता है वह केवलज्ञान है। यह ज्ञान संपूर्ण पदार्थों (रूपी–अरूपी) की समस्त त्रिकालवर्ती पर्यायों को समग्र रूप से ग्रहण करता है। चूंकि केवलज्ञान अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, विरति एवं क्षायिक सम्यक्त्व आदि अनंत गुणों से पूर्ण है, इसलिए इसे संपूर्ण कहा जाता है।[28]
3. **सकल**– केवलज्ञान अखंड होने से सकल है, समस्त बाह्य अर्थ में प्रवृत्ति नहीं होने से ज्ञान में जो खंडपना आता है, ऐसा खंडपना केवलज्ञान में संभव नहीं है, क्योंकि केवलज्ञान के विषय त्रिकालगोचर अशेष बाह्य पदार्थ हैं अथवा द्रव्य, गुण और पर्यायों के भेद का ज्ञान अन्यथा नहीं बन सकने के कारण जिनका अस्तित्व निश्चित है, ऐसे ज्ञान के अवयवों का नाम कला है। इन कलाओं के साथ वह अवस्थित रहता है, इसलिए सकल है।[29]
4. **असाधारण**– केवलज्ञान जैसा और कोई दूसरा ज्ञान नहीं होता है। मति आदि ज्ञान की अपेक्षा यह विशिष्ट है, इसलिए असाधारण है।[30]
5. **निरपेक्ष**– केवल ज्ञान मत्यादिक ज्ञान की अपेक्षा निरपेक्ष है। केवलज्ञान होने पर मत्यादिक ज्ञान रहते नहीं हैं।[31] यह ज्ञान तो अपने आवरण का पूर्ण क्षय होने से होता है। इन्द्रियादि की अपेक्षा से रहित होता है, निरपेक्ष है। जो ज्ञान किसी की सहायता के बिना संपूर्ण ज्ञेय पदार्थों को विषय करता है अथवा जो ज्ञान मनुष्य भव में उत्पन्न होता है, अन्य किसी भव में उत्पन्न नहीं होता है, उसकी अवस्थिति देह और विदेह दोनों अवस्थाओं में पाई जाती है।
6. **विशुद्ध**– चार ज्ञान क्षायोपशमिक होने से सर्वथा विशुद्ध नहीं होते हैं, जबकि केवलज्ञान संपूर्ण ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्म के विगत (क्षय) होने पर ही होता है, अतः इसे विशुद्ध कहा गया है।[32]
7. **सर्वभावप्रज्ञापक**– यह समस्त जीवादिक पदार्थों का प्ररूपक है, इसलिए यह सर्वभाव प्रज्ञापक है। शंका होती है कि केवलज्ञान को तो मूक बतलाया है, फिर यह पदार्थों का प्ररूपक कैसे हो सकता है? समाधान में कहा गया है कि यह बात उपचार से सिद्ध होती है, अतः उसे प्ररूपक कहा है, क्योंकि समस्त जीवादिक भावों का सर्वरूप से यथार्थदर्शी ज्ञान केवलज्ञान है और शब्द केवलज्ञान द्वारा देखे हुए पदार्थों की ही प्ररूपणा करता है, इसलिए उपचार से ऐसा मान लिया जाता है कि केवलज्ञान ही उनका प्ररूपक है।[33]

8. **संपूर्ण लोकालोक विषयक–** धर्मादिक द्रव्यों की जहां वृत्ति है, उसका नाम लोक है और इससे विपरीत अलोक है। इसमें आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य नहीं है। यह अनंत और अस्तिकाय रूप है। लोक और अलोक में जो कुछ ज्ञेय पदार्थ होता है, उसका सर्वरूप से प्रकाशक होने से यह संपूर्ण लोकालोक विषयक कहा जाता है।[34]

9. **अनंत पर्याय–** मत्यादिकज्ञान जिस प्रकार सर्वद्रव्यों को, उनकी कुछ पर्यायों को परोक्ष-प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं, उस प्रकार यह ज्ञान नहीं जानता है, किंतु यह तो समस्त द्रव्यों को और उनकी समस्त पर्यायों को युगपत् प्रत्यक्ष जानता है, इसलिए यह अनंत पर्याय कहा जाता है।[35]

10. **अनन्त–** वह पर्याय से अनन्त है।[36] जो ज्ञान अनंत होता है, उसका नाम केवलज्ञान है। क्योंकि एक बार आत्मा में इस ज्ञान के हो जाने पर फिर उसका प्रतिपात नहीं होता है तथा ज्ञेय पदार्थ अनन्त होते हैं और जो उन अनंत ज्ञेयों को जानता है उसे भी अनंत माना गया है। अथवा जानने योग्य अनन्त विषय होने से यह अनन्त पर्याय वाला है, अत: केवलज्ञान अनन्त है।[37] अथवा जितने ज्ञेयपदार्थ हैं, उनसे अनन्तगुण भी ज्ञेयपदार्थ हों तो भी उनको जानने की क्षमता होने से केवलज्ञान अनंत हैं।

11. **एकविध–** सर्वशुद्ध होने से केवलज्ञान एक प्रकार का है।[38] सभी प्रकार के ज्ञानावरण का क्षय होने से उत्पन्न होता है, अत: यह एकविध है।[39] षट्खण्डागम के अनुसार जो ज्ञान भेद रहित हो, वह 'केवलज्ञान' है। भेदरहितता एकत्व की सूचक है।[40]

12. **असपत्न–** सपत्न का अर्थ शत्रु है, केवलज्ञान के शत्रु कर्म हैं, वे शत्रु नहीं रहे हैं, इसलिए केवलज्ञान असपत्न है। उसने अपने प्रतिपक्षी का समूल नाश कर दिया है।[41]

13. **शाश्वत–** लब्धि की अपेक्षा प्रतिक्षण स्थायी है, अंतर रहित-निरन्तर विद्यमान रहता है।[42] निरंतर उपयोग वाला होने से शाश्वत है।[43]

14. **अप्रतिपाती–** नाश को प्राप्त नहीं होने से अप्रतिपाती है।[44] लब्धि की अपेक्षा त्रिकाल स्थायी है, अन्तरहित होने से अनन्तकाल तक विद्यमान रहता है अर्थात् उत्पन्न होने के बाद जिसका नाश नहीं होता है, वह अप्रतिपाती ज्ञान है। वह सर्व द्रव्यों के परिणाम प्राप्त भावों के ज्ञान का कारण है।[45]

प्रश्न– जो शाश्वत होता है वह अप्रतिपाती तो होता ही है, फिर 'अप्रतिपाती' अलग विशेषण क्यों दिया है?

उत्तर– 'शश्वद् भवं शाश्वतम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो अनवरत होता है, वह शाश्वत

कहलाता है अर्थात् कोई भी पदार्थ जितने काल तक रहता है, तो वह निरंतर (शाश्वत) ही रहता है। परंतु इस अर्थ में से अप्रतिपाती का अर्थ स्फुट नहीं होता है। यहाँ 'अनवरत' रहने वाला ज्ञान कितने समय तक रहेगा? इस प्रश्न की संभावना रहती है, इसलिए 'अप्रतिपाती' कहा गया है। केवलज्ञान एक बार होने के बाद हमेशा रहता है, उसका नाश नहीं होता है। इस बात को पुष्ट करने के लिए शाश्वत और अप्रतिपाती विशेषण दिये हैं।[46]

15. **असहाय**– असहाय का अर्थ है कि इसमें इन्द्रिय आदि की तथा मति आदि ज्ञान की अपेक्षा नहीं रहती है, इसलिए केवलज्ञान पर की सहायता से रहित होने की वजह से असहाय माना गया है। जैसे कि मणि पर लगे हुए मल की न्यूनाधिकता और विचित्रता से मणि के प्रकाश में न्यूनाधिकता और विचित्रता होती है। यदि मणि पर लगा हुआ मल हट जाये, तो मणि के प्रकाश में होने वाली न्यूनाधिकता और विचित्रता मिटकर एक पूर्णता उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार आत्मा पर जब तक ज्ञानावरणीयकर्म का मल रहता है तब तक उसका न्यूनाधिक और विचित्र क्षयोपशम होता है, तभी तक आत्मा में न्यूनाधिक क्षयोपशम वाले मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान रहते हैं। परन्तु जैसे ही आत्मा पर लगा हुआ ज्ञानावरणीय कर्म-मल पूर्णतः नष्ट होता है, वैसे ही आत्मा में एक पूर्ण-केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वही रहता है। यह केवलज्ञान इन्द्रिय, प्रकाश और मनोव्यापार की अपेक्षा से रहित होने से असहाय है।

प्रश्न– केवलज्ञान आत्मा की सहायता से उत्पन्न होता है, इसलिए इसे केवल (असहाय) नहीं कह सकते हैं।

उत्तर– नहीं, क्योंकि ज्ञान से भिन्न आत्मा नहीं होती है, इसलिए इसे असहाय कहने में आपत्ति नहीं है।

प्रश्न– केवलज्ञान अर्थ की सहायता लेकर प्रवृत्त होता है, इसलिए इसे केवल (असहाय) नहीं कह सकते हैं।

उत्तर– नहीं, क्योंकि नष्ट हुए अतीत पदार्थों में और उत्पन्न नहीं हुए अनागत पदार्थों में भी केवलज्ञान की प्रवृत्ति पायी जाती है, इसलिए यह अर्थ की सहायता से होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।[47]

प्रश्न– अवधि व मन:पर्यय ज्ञान भी इन्द्रियादि को अपेक्षा न करके केवल आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होते हैं इसलिए उनको भी केवलज्ञान क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर– जिसने सर्व ज्ञानावरणीय कर्म का नाश किया है, ऐसे केवलज्ञान को ही 'केवलज्ञान'

कहना रूढ है, अन्य ज्ञानों में 'केवल' शब्द की रूढ़ि नहीं है।[48]

उपसंहार– इस शोधपत्र में केवलज्ञान के लिए प्रयुक्त प्रमुख विशेषणों का और उनके वास्तविक अर्थ का अन्वेषण करने का प्रयास किया गया है। इस आधार पर केवलज्ञान का स्वरूप विशेषरूप से स्पष्ट होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में जो ग्रन्थकारों का समय दिया है, वह ''जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार'' (संपादक – फतेहचंद बेलानी) पुस्तक के आधार से दिया गया है।

संदर्भ सूची–

1. तओ केवली पण्णत्ता, तं जहा-ओहिणाणकेवली, मणपज्जवणाणकेवली, केवलीणाणकेवली। - युवाचार्य मधुकरमुनि, स्थानांग सूत्र स्था. 3 उद्दे. 4, पृ. 192
2. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 77
3. युवाचार्य मधुकरमुनि, नंदीसूत्र, पृ. 68
4. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा 84
5. वही, गाथा 828
6. वही, गाथा 84 की टीका, हारिभद्रीय नन्दीवृत्ति, पृ. 19
7. नंदीचूर्णि पृ. 21
8. सकलं तु सामग्रीविशेषतः समुद्भूतं समस्तावरणक्षयापेक्षं, निखिलद्रव्यपर्याय-साक्षात्कारिस्वरूपं केवलज्ञानम्। - प्रमाणनयतत्त्वालोक सूत्र. 2.23, पृ. 24
9. केवलं-सम्पूर्णज्ञेयं तस्य तस्मिन् वा सकलज्ञेये यज्ज्ञानं तत् केवलज्ञानम्, सर्वद्रव्यभावपरिच्छेदीतियावत्। अथवा केवलं एकं मत्यादिज्ञानरहितमात्यन्तिक-ज्ञानावरणक्षयप्रभवं केवलज्ञानं अविद्यमानस्वप्रभेदम्।-सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र, 1.9 पृ. 70
10. तत सवर्थावरणविलये चेतनस्य स्वरूपाविर्भावो मुख्यं केवलम्।-प्रमाणमीमांसा,(विवेचन- पं. सुखलाल संघवी) अध्याय 1.15 पृ.10
11. मलधारी हेमचन्द्र, विशेषावश्यकभाष्य, गाथा 823 की टीका, पृ. 336
12. ज्ञानबिन्दुप्रकरणम्, पृ. 19
13. घासीलालजी म., नंदीसूत्र, पृ. 17,18
14. अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं। पलयं गयं च जाणादि तं णाणमदिंदियं भणियं।-प्रवचनसार, गाथा 41, पृ. 70
15. नियमसार, हस्तिनापुर, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, प्र. सं. 1985, गाथा 159 पृ. 463
16. कसायपाहुड, पु. 1, पृ. 19
17. तं च केवलणांणं सगलं संपुण्णं असवत्तं- षट्खण्डागम पु. 13 सूत्र 5.5.81 पृ. 345
18. असहायं स्वरूपोत्थं निरावरणमक्रमम्। घातिकर्म-क्षयोत्पन्नं केवल सर्वभावगम्। - तत्त्वार्थसार, प्रथम अधिकार, गाथा 30 पृ.15

19. सर्वार्थसिद्धि, 1.9, पृ. 68
20. तत्त्वार्थराजतार्तिक, 1.9.6-7 पृ. 32
21. अशेषद्रव्यपर्यायविषयं विश्वलोचनम्। अनंतमेकमत्यक्षं केवलं कीर्तितं जिनैः। -ज्ञानार्णव, प्र. 7 गाथा 8, पृ. 163
22. षट्खण्डागम (धवला), पु. 6, सूत्र 1.9.1.14, पृ. 29
23. षट्खण्डागम (धवला) पु. 13 सूत्र 5.5.21 पृ. 213
24. संपुण्ण तु समग्गं केवलमसवत्तं सव्वभावगयं। लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मणुदेव्वं।। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, गोम्मटसार (जीवकांड), भाग 2, गाथा 460
25. पंचसंग्रह, गाथा 126, पृ. 27
26. अभयचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्तीकृत (डॉ. गोकुलचन्द्र जैन), कर्मप्रकृति, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. 6
27. केवलं परिपूर्णं समस्तज्ञेयावगमात्। - मलधारी हेमचन्द्र, पृ. 337
28. षट्खण्डागम पु. 13 सूत्र 5.5.81, पृ. 345
29. वही
30. घासीलालजी म., नंदीसूत्र, पृ. 166
31. मत्यादिज्ञाननिरपेक्षत्वादसहायं वा केवलं।- मलधारी हेमचन्द्र, पृ. 337
32. घासीलालजी म., नंदीसूत्र, पृ. 166
33. वही
34. वही, पृ. 167
35. वही, पृ. 167
36. विशेषावश्यकभाष्य गाथा 828
37. तच्चानन्तज्ञेयविषयत्वेना ऽनन्तपर्यायत्वादनन्तम्। -मलधारी हेमचन्द्र, गाथा 828, पृ. 336
38. विशेषावश्यकभाष्य गाथा 828
39. समस्तावरणक्षयसंभूतत्वादेकविधं। -मलधारी हेमचन्द्र, पृ. 337
40. षट्खण्डागम (धवला), पु. 12, सूत्र 4.2.14.5, पृ. 480
41. षट्खण्डागम पु. 13 सूत्र 5.5.81 पृ. 345
42. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 77, विशेषावश्यकभाष्य, गाथा 828
43. शश्वद्भावात् शाश्वतं सततोपयोगमित्यर्थः।- मलधारी हेमचन्द्र, पृ. 337
44. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा 828
45. अप्रतिपाति-अव्ययं सदाऽवस्थायीत्यर्थः। - मलधारी हेमचन्द्र, पृ. 337
46. प्रशमरति, भाग 2, भद्रगुप्तजी, परिशिष्ट, पृ. 266,267
47. कसायपाहुड, पु. 1 गाथा 1, पृ. 19
48. भगवती आराधना, गाथा 50, पृ. 95

-श्री सुधर्म विद्यापीठ, एस. बी. बी. जे. बैंक के पास, चांदीहॉल, जोधपुर-342001 (राज.)

संगोष्ठी-आलेख

आचार्य हस्ती विरचित काव्य पदों में आध्यात्मिकता*

श्री सम्पतराज चौधरी

अध्यात्म क्या है?

योगिराज आनन्दघन ने 'श्रेयांस जिन-स्तवन' में कहा है-

निज स्वरूप जे किरिया साधे, ते अध्यातम लहिए रे।
जे किरिया करी चउगति साधे, ते न अध्यातम कहिए रे।।

अर्थात् जिस क्रिया को करने से अपने स्वरूप की प्राप्ति होती है, उस क्रिया को अध्यात्म कहते हैं। जिस क्रिया को करने से आत्मा चतुर्गति रूप संसार में भटकती है, उसे अध्यात्म नहीं कहते हैं। 'अध्यात्म' शब्द की व्युत्पत्ति में मनीषियों ने कहा है-'आत्मनि इति अध्यात्म्' अर्थात् आत्मा में रमण करना अध्यात्म है। निष्कर्ष यह है कि जिस क्रिया से संसार घटे, मोक्ष के प्रति प्रीति बढ़े और अन्त में आत्म-स्वरूप की प्राप्ति हो उसे अध्यात्म कहते हैं। मेरी दृष्टि में अध्यात्म की ये परिभाषाएँ आचार्य हस्ती में पूर्ण रूपेण चरितार्थ होती है।

आचार्यदेव के जीवन का गहन अध्ययन करने के बाद कोई भी विज्ञ इस निर्णय पर ही पहुँचेगा कि वे अध्यात्म के प्रतिमान ही नहीं, उसके पर्याय थे। आचार्यदेव के अंतेवासी मुनि गौतम, जिन्होंने उन्हें अत्यन्त निकट से देखा और समझा है, उनके बारे में कहते हैं- *''उनका हर समय (काल) समय (आत्मा) पर केन्द्रित था, उनका हर समय (सिद्धान्त) समय (आत्मा) से सम्बन्धित था, तथा उनका हर समय (क्षेत्र) समय (आत्मा) में अवस्थित था।''*

वस्तुतः उनकी निरंजन देह अध्यात्म की माटी का दीवट था, उनका संयम अध्यात्म का तेल था, उनकी साधना अध्यात्म की बाती थी, उनकी दृष्टि अध्यात्म की लौ थी, उनका ध्यान अध्यात्म का धूप था और उनका ज्ञान एवं दर्शन अध्यात्म का प्रकाश था। ऐसे आचार्यदेव, जिनका सम्पूर्ण जीवन अध्यात्म से ही ओतप्रोत हो तो उनके काव्य में भी अध्यात्म के अतिरिक्त और क्या हो सकता है।

---

* आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के सान्निध्य में 13-14 नवम्बर, 2010 को पाली चातुर्मास मे आचार्य हस्ती की जन्म-शताब्दी पर आयोजित राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी में प्रस्तुत निबंध।

आचार्य देव विरचित काव्य

आचार्यदेव विरचित अधिकांश काव्य पदों का संग्रह सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल से प्रकाशित 'गजेन्द्र पद मुक्तावली' में उपलब्ध है। इसमें 70 काव्य पदों का संकलन है। इनके अतिरिक्त भगवान महावीर के पश्चात् 20 वीं शती तक के प्रमुख आचार्यों का इतिहास उन्होंने पद्य रूप में 'जैन आचार्य चरितावली' में 232 छन्दों में गूंथा है। इनकी एक और पद्यमयी रचना है-'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' जो जैन स्थानकवासी परम्परा का इतिहास बताती है। इसमें 17 पट्टावलियाँ संकलित हैं। इन दोनों का प्रकाशन भी सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर ने किया है। आचार्यदेव विरचित काव्य परिमाण की दृष्टि से अल्प है, परन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से उत्कृष्ट है। भाव, भाषा, लय और शिल्प, सभी दृष्टियों से वह सर्वथा अद्भुत है।

आचार्यदेव ज्ञान और वैराग्य के अनुपम संगम थे। वे न तो शुष्क ज्ञानी थे और न ही अन्धे वैरागी। उनके ज्ञान में वैराग्य का रस था तो वैराग्य में ज्ञान के चक्षु थे। यही कारण है कि उनके काव्य में भी उनका जीवन प्रतिबिम्बित होता है। उनकी काव्य विधा की छवियाँ विविधवर्णी हैं। उनमें स्तुति है, विनय है, आत्म-निवेदन है, उद्बोधन है, परहित की संवेदना है, आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण है तो आत्मानन्द की अनुभूति भी है। उनका काव्य-चिंतन उदात भावों से आलोकित है, जिनमें आप्त वचन पूर्णरूपेण रचे-बसे हैं। अपने काव्य पदों में उन्होंने जैन दर्शन के गुह्यतम रहस्यों को सुबोध, प्राञ्जल एवं गेयात्मक शैली में जन-जन के लिये प्रस्तुत किया है। उनका ज्ञान गाम्भीर्य, भक्ति प्रवणता, साम्प्रदायिक औदार्य, आचार सुनिष्ठा, आत्मवत् सर्वभूतेषु की अवधारणा एवं निजानन्द रसलीनता उन्हें श्रमणत्व के उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित करती हैं। इसीलिए उन्हीं के गुणों से आपूरित उनका काव्य जीवन को अमरता की छाँह देता है। लोक प्रचलित लयों में उन्होंने हिन्दी अध्यात्म साहित्य को अनमोल रत्न दिये हैं, जिनमें प्रभविष्णुता, अर्थवत्ता और आकर्षण है। समीचीन एवं सटीक शब्दों का प्रयोग उनके पदों की अर्थवत्ता का प्रमुख आयाम है। इनकी रचना निष्काम भाव से हुई है, जिनमें कर्म बंधन से मुक्त होकर संसार चक्र से छूटने के संदेश की धारा अविरल गति से बह रही है। ये लौकिक कामनाओं से रहित हैं एवं आप्त वचनों से संपूर्त हैं। उनका एक मात्र उद्देश्य वीतराग भाव लाने के लिये अध्यात्म तत्त्व को जगाना है।

आचार्यदेव का काव्य अध्यात्म की मणिमाला है। उसीमें से कुछ मणियों में समाहित प्रकाश की आभा का दिग्दर्शन कराना इस निबन्ध का उद्देश्य है, क्योंकि इसकी मर्यादित सीमा में विस्तृत विवेचन सम्भव नहीं है। इस आलेख के परिशिष्ट में काव्य की इस अनमोल विरासत को परिचर्चा के लिये मोटे तौर पर आठ अंगों में बांटा गया है, यद्यपि एक अंग का रस दूसरे अंग में भी छलकता दिखेगा।

काव्य पदों में अध्यात्म की अभिव्यंजना

1. जिन-स्तुति विषयक पद

जैन दर्शन में साधक के आराध्य वीतराग देव होते हैं, जो अकर्ता एवं मुक्त हैं। अतः प्रभु की प्रार्थना में प्रभु कर्ता के रूप में नहीं, अपितु कारण रूप में होते हैं। किसी भी कार्य को सिद्ध करने के लिये उसके अनुरूप कारणों की आवश्यकता होती है। ये कारण दो तरह के होते हैं- एक उपादान और दूसरा निमित्त। मिट्टी से घड़ा बनता है, इसमें घट का उपादान कारण मिट्टी है। किन्तु केवल मिट्टी से ही घड़ा नहीं बन सकता। उसे बनाने के लिये अन्य सहायक कारणों की भी आवश्यकता होती है, जैसे चाक एवं कुम्भकार की, जिनके बिना मिट्टी से घड़ा नहीं बन सकता। ऐसे सहायक कारण निमित्त कारण कहलाते हैं। कमल के विकास में सूर्य निमित्त कारण है, साक्षात् कर्त्ता नहीं। उसी प्रकार अरिहन्त साधक के विकास में निमित्त होते हैं। उपादान और निमित्त दोनों में से एक के भी अभाव से कार्य की सिद्धि नहीं होती है। भव्य आत्माओं में मोक्ष प्राप्ति की योग्यता होती है जो उपादान कारण है। अरिहन्त या वीतराग का आलम्बन मुक्ति में सहायक होता है। अतः अरिहन्त की भक्ति या उनका आलम्बन मुक्ति में निमित्त कारण होता है। अरिहन्तों की दी गई हित-परक वाणी के चिन्तन से मुक्ति मार्ग उद्भासित होता है। यह उनका हम पर उपकार है। उपकारी के प्रति अपने अहोभाव व्यक्त करने से साधक में शुभ भावों की अभिवृद्धि होती है। उनके गुण स्मरण से स्वयं में भी उनके गुणों का आविर्भाव होता है, जो मुक्ति मार्ग की ओर ले जाते हैं। इस तरह अरिहन्तादि की भक्ति-स्तुति साधक के आध्यात्मिक उन्नयन में सहायक की भूमिका निभाती है।

आचार्यदेव के स्तुति पदों में कहीं भी लोक कामना नहीं है। उनके लिये अरिहन्त की स्तुति का फल केवल आत्म-गुणों की प्राप्ति है। इहलोक और परलोक के सुख में दुःख छिपा होता है। वह सुख शाश्वत नहीं होता है। अरिहन्त शाश्वत सुख के स्वामी हैं, अतः उनकी स्तुति का प्रयोजन भी शाश्वत सुख की प्राप्ति ही होना चाहिए। उनके स्तुति पदों में केवल शाश्वत सुख प्राप्त करने की अभिलाषा है। शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए वे कहते हैं-

ओम् शान्ति, शान्ति, शान्ति, सब मिल शान्ति कहो।
भीतर शान्ति, बाहिर शान्ति, तुझमें शांति मुझमें शांति।
सबमें शांति बसाओ, सब मिल शांति कहो।।

(पद संख्या 1)

अर्थात्- "हे आत्मन्! शान्ति प्राप्त करने के लिये तू शांतिनाथ भगवान के गुणों का स्मरण कर ताकि उनके जैसे गुण तुझमें भी प्रकट हों। शांतिनाथ भगवान तो तुझमें, मुझमें

और सब में ही बसते हैं। अर्थात् शांतिनाथ भगवान जैसी आत्मा सभी भव्य प्राणियों में बसती है, पर कर्मदलों से आवृत्त होने से वे शान्ति एवं मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकी हैं। उनकी जैसी शान्ति प्राप्त करने के लिये तू स्वयं में उनके जैसे गुणों का प्रकटीकरण कर।'' ये गुण कैसे प्रकट होंगे, आचार्य देव ने उसका रास्ता बताया है-

विषय-कषाय को दूर निवारो,
काम क्रोध से करो किनारो।
शांति साधना यों हो सब मिल शांति कहो।।

वे कहते हैं- ''रूप, रस, गन्ध, वर्ण और स्पर्श सब इन्द्रियों के विषय हैं। काम, क्रोध, मान और माया कषाय हैं, जो मन के विकार हैं। ये सब आत्मा के गुण नहीं हैं। आत्मा के लिये ये सब 'पर' हैं। इनको तुम दूर कर दोगे तो आत्मगुण स्वतः प्रकट हो जायेंगे। इन आत्मगुणों को प्रकट करना ही शांतिनाथ भगवान की साधना है, जिससे तुम्हें अतुल शांति मिल जायेगी, दुःख सदैव के लिये दूर हो जायेंगे।'' स्तुति के अंतिम पद में वे कहते हैं-

शान्ति प्रभु सम समदर्शी हो, करे विश्व-हित जो शक्ति हो।
'गजमुनि' सदा विजय हो, सब मिल शांति कहो।।''

अर्थात्- ''हे आत्मन्! शांतिनाथ भगवान में श्रद्धा रखकर उनके गुणों को अपने जीवन में क्रियात्मक रूप दोगे तो तुम्हें समत्वयोग की प्राप्ति होगी और तुम राग-द्वेष से सर्वथा विरत हो जाओगे। तब मान-अपमान, अनुकूलता-प्रतिकूलता, निंदा-प्रशंसा आदि विपरीत भाव तुम्हें विचलित नहीं करेंगे। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अवस्था प्राप्त कर तुम शांतिनाथ भगवान की तरह समदर्शी हो जाओगे, उनके जैसे हो जाओगे। उपास्य और उपासक का भेद समाप्त हो जायेगा। फिर तो सर्वदा तेरी जय-विजय होगी। तू भव बंधन से मुक्त हो जायेगा। परन्तु जब तक यह तेरा शरीर रहे, तूं भी अरिहंत शांतिनाथ की तरह लोक-कल्याण में अपनी शक्ति को नियोजित रखना।''

आचार्यदेव के लिये जिनेन्द्र स्तुति का प्रयोजन है- आत्मा की निर्मलतम दशा को प्राप्त करना। स्तुति से वीतराग प्रसन्न नहीं होते और न ही उनकी स्तुति का प्रयोजन उन्हें प्रसन्न करना है। स्तुति का एकमात्र प्रयोजन उनके गुणों का आलम्बन लेकर हमारे परिणामों में निर्मलता लाना है। परिणामों में निर्मलता लाने में वीतराग का आलम्बन निमित्त हो जाता है।

स्तुति करते हुए मन में समर्पण भाव और विनय का होना अति आवश्यक है। इसीलिये वे एक पद (पद सं.19) के अंत में जिनराज को निवेदन करते हैं-

जिनराज चरण का चेरा, मांगू मैं सुमति बसेरा।
हो 'हस्ती' नित वंदन करना।।

इसमें भी उन्होंने सुमति प्राप्त करने की कामना की है कोई लौकिक सुख की नहीं। वीर प्रभु की स्तुति (पद सं. 29) में भगवान ने जो त्रिपदी का ज्ञान देकर हमारे अज्ञान को दूर किया है, उसके लिये प्रभु के प्रति अपने अहोभाव प्रकट किये हैं। जिनवर की स्तुति (पद सं. 38) के माध्यम से आचार्यदेव संदेश देते हैं- "हे आत्मन्! तुझे ये दुर्लभ मानव का शरीर मिला है जो भव सागर से तिरने के लिये नाव है, परन्तु तुमने इसका सदुपयोग नहीं किया। तुमने अपने हाथों से अपार सम्पत्ति अर्जित की, लेकिन अपनी प्रतिष्ठा में ही सब उड़ा दी। पर-हित में अपने हाथों से उसका दान नहीं किया, तो तेरे हाथ भी निरर्थक ही रहे। तुमने मानव भव में आकर भगवान की वाणी का श्रवण नहीं किया तो तेरे कान भी व्यर्थ हो गये। निर्ग्रंथ मुनि के दर्शन नहीं किये तो तेरी आँखें भी अकारथ ही रही। धर्म-स्थान में जाकर सत्संगति नहीं तो तेरे पाँव भी निरुपयोगी रहे एवं जिह्वा से प्रभु का गुणगान नहीं किया तो उसका होना भी वृथा ही रहा। अतः हे आत्मन्! तू अब समझले कि धन का भूषण दान है, शिर का भूषण गुरु वंदन है, वीर का भूषण क्षमा है परन्तु सबका भूषण दोष रहित आचार है। अभी तक तुमने पुद्गल को अपना मान रखा है। उसे छोड़ कर अब आत्मभाव में रहेगा तो संसार चक्र से मुक्त हो जायेगा।"

सम्यग्दर्शन का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं (पद सं.40)- "ऐसे देव जिनके कोई कर्म शेष नहीं हैं वे ही हमारे देव हैं, शुद्ध आचार का पालन करने वाले अपरिग्रही साधु ही हमारे गुरु हैं और जिनेन्द्र देव द्वारा प्ररूपित दया धर्म ही हमारा धर्म है। अतः हे आत्मन्! इन तीनों के प्रति दृढ़ आस्था रखकर आगे बढ़ेगा तो तुझे अपार शान्ति मिलेगी।"

भगवान के कल्याणक एवं उनके मंगल प्रसंगों को पर्वों के रूप में मनाने की हमारी परम्परा रही है। इसी क्रम में अक्षय तृतीया भगवान ऋषभदेव के पारणक रूप में मनाई जाती है। पर्व मनाने में भी आचार्यदेव का अभिप्राय आत्मशुद्धि ही रहता है। पर्वों में जो रूढ़िवादी व्यवहार होते हैं, उन्हें वे अभीष्ट नहीं है। पद सं. 51 में कहते हैं-

आखा तीज का आखा खाना, लोक रूढ़ी व्यवहार।
भाव अखंडित राखो मन में, होगा खेवा पार।।
आत्मशुद्धि और शासन पोषण, है इसका शृंगार।
या विधि पर्व मनाकर भाई तिर जाओ संसार।।

पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति करते हुए आचार्यदेव कहते हैं- "हे प्रभु! तुम जैसे दयालु स्वामी को पाकर भी हम दीन ही हैं, क्योंकि तुमने तो अक्रिय (मुक्त) बनने के लिये सक्रिय पद (साधना) को अपनाया, परन्तु हम तो अपनी दुष्क्रियता (पापाचरण) को दूर किये बिना

ही मुक्ति की अभिलाषा रखते हैं। फिर मुक्ति कैसे मिलेगी? अब हमें ऐसी मति दो कि हम पहले अपने कुकर्मों से मुक्त हों। यह तुम्हारे स्वरूप का निरन्तर चिंतन करने से ही आयेगी।'' (पद संख्या 63)

मरुदेवी माता का गुणगान करते हुए वे आज की माताओं को उद्‌बोधन देते हैं (पद सं. 67) कि- ''ए बहनों! तुम्हारा जननी पद तो मरुदेवी माता की तरह है, जिसने सभी मिथ्या प्रपंचों को त्याग दिया था। तुम उस माता के पद को बिसार कर लौकिक माताओं को मनाती हुई भटक रही हो। लौकिक माताओं से तुम्हें शान्ति नहीं मिलने वाली है। अपने भ्रम को त्यागकर मरुदेवी माता का अनुसरण करो।''

आचार्यदेव के स्तुति पदों में जिन दर्शन का निरूपण हुआ है। जिस चिरंतन सत्य का उन्होंने साक्षात्कार किया, उसे ही अपने पदों में आलोकित कर दिया। पदों की भाषा सरल होते हुए भी उनमें अर्थ गाम्भीर्य है। उनके अनुसार भक्ति, साधना का प्रथम सोपान है, लेकिन उसका लक्ष्य ऐहिक स्वार्थ न होकर आत्मशुद्धि होना चाहिए। अरिहन्त के प्रति प्रीति से आत्मगुण प्रकट होते हैं। अरिहन्त का निमित्त पाकर उपादान में जागृति आती है। वे अपनी चेतना को प्रभु का अनुयायी बनाना चाहते हैं। तीर्थंकर के आलम्बन से हम निरालम्बनता को प्राप्त होते हैं। शास्त्रों का भी यही कथन है कि परम वीतराग तीर्थंकर का आलम्बन लेने वाला निश्चय से स्वयं के स्वरूप को प्रकट करता है। ऐसी आस्था सभी को रखनी चाहिए।

जैन दर्शन के मूल तत्त्व को भक्ति के आवेग में विस्मृत कर भक्ति-गीतों में लौकिक कामनाओं की प्रस्तुति को उचित नहीं कहा जा सकता।

2. गुरु भक्ति विषयक पद

अरिहन्त भगवान में भी गुरु तत्त्व होता है, परन्तु आज उनकी समुपस्थिति न होने से आचार्य, उपाध्याय और साधु ही गुरु कोटि में आते हैं। वे रत्नत्रयी के गुणों से समृद्ध होते हैं, अतः उन्हें गुरु कहते हैं। जैन दर्शन में तीन तत्त्वों का सम्यक् श्रद्धान मुक्ति मार्ग की पहली सीढ़ी है। ये तीन तत्त्व हैं- देव, गुरु और धर्म। निर्ग्रंथी साधु ही गुरु पद के योग्य होता है। संत कबीर ने साधक के जीवन में सद्‌गुरु के महत्त्व को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है-

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर बाहे चोट।।
गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा मांहि।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाहिं।।
गुरु बिन ज्ञान न उपजे, गुरु बिन मिले न मोख।

गुरु बिन लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष।।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि गुरु के प्रति विनय ही साधक के जीवन-निर्माण का मूलाधार है। साधक का विनय गुण आत्म-शुद्धि और कर्मक्षय का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरु के उपकारों के प्रति अपने अहोभाव व्यक्त करते हुए विनयपूर्वक उनकी वंदना और सेवा करे। आचार्यदेव का अपने गुरु और अन्य पूर्वाचार्यों के प्रति मन में गहरा अहोभाव था, जो उनके काव्य में भी प्रतिबिम्बित हो गया।

अपने गुरु शोभाचार्य को वे एक ऐसे गुरु के रूप में देखते हैं, जो सर्वोत्कृष्ट हैं और गुरु के रूप में एक आदर्श प्रतिमान हैं। इसीलिये वे भाव विभोर होकर कह उठते हैं-

अगर संसार में तारक, गुरुवर हों तो ऐसे हों। (पद संख्या 30)

उपर्युक्त पद में वे कहते हैं- "संसार में तारने वाले कोई गुरु हो तो मेरे गुरु शोभाचार्य के जैसे हों, जो विषय-कषायों से दूर थे, शुभ ध्यान में अपने स्वरूप में रमण करते थे, भावों से सरल थे और प्रपंचों से सर्वथा विलग थे।" गुरुदेव से भी वे कोई लौकिक कामना नहीं करते हैं। उनसे भी वे यही मांगते हैं-"हे गुरुदेव! करुणा करके मेरी रग-रग में शांति भर दो। (पद सं.31)

गुरुदेव की महिमा का वर्णन करते हुए आचार्यदेव कहते हैं-

घणो सुख पावेला, जो गुरु वचनों पर प्रीति बढ़ावेलां।
गुरु कारीगर के सम जग में, वचन जो रखावेलां।
पत्थर से प्रतिमा जिम वो नर, महिमा पावेला।। (पद संख्या 16)

गुरु एक शिल्पकार है जो अनगढ़ पत्थर को महिमावन्त मूर्ति बना देता है। गुरु के प्रति अहोभाव व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

गुरु मुख देखे दुःख टाले सब, होवे मंगलाचार।
सुर तरु सम सेवा नित भविजन, सुख शांति दातार।।
उपकारी सद्गुरु सम दूजा, नहीं कोई संसार।
मोह भंवर में पड़े हुए को, यही बड़ा आधार।। (पद संख्या 37)

अपने पूर्वाचार्यों को याद करते हुए वे स्वयं को उनका अनुचर बतलाते हैं (पद संख्या 28)। जिस गुरु परम्परा से आचार्यदेव का संघ विख्यात है, उन आचार्य रत्नचन्द्रजी की स्तुति करते हुए वे कहते हैं-

ये 'गज मुनि' चरणों का चेरा, यह सकल संघ तरने तेरा।
दो शक्ति विमल मेघाधर की, जय बोलो रत्न मुनीश्वर की।।

उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान ने विनयी शिष्य के जिन गुणों का प्रतिपादन किया है वे

सभी गुण आचार्यदेव में प्रपूरित थे। गुरुओं के समक्ष वे विनय और समर्पण की प्रतिमूर्ति थे।

3. आत्म-बोध विषयक पद

आत्म-बोध से रहित कोई भी क्रिया मुक्ति में सहायक नहीं हो सकती, अतः साधना में आत्मबोध होना अति आवश्यक है। आत्मा यद्यपि देह रूपी मंदिर में रहती है, पर वह देह से भिन्न है। आत्मा अतीन्द्रिय पदार्थ है, जड़ से सर्वथा भिन्न। जड़ पदार्थ आत्मा के साथ संयोग से जुड़े हैं। जो हमारे मन में रागादि भाव आते हैं वे भी आत्मा के अपने भाव नहीं हैं। सुख प्राप्ति की इच्छा और प्रयत्न के बावजूद भी रागादि भावों से आवृत्त आत्मा को सुख की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि हम चेतन के बजाय जड़ पदार्थों में सुख ढूंढते हैं। शाश्वत सुख आत्मा का धर्म है, अतः आत्मा से ही पाया जा सकता है। अपनी शुद्ध दशा में आत्मा को सत् (सत्ता), चित् (चेतन) और आनन्द कहा गया है, क्योंकि इसकी सत्ता अनादि और शाश्वत है, चेतन इसका लक्षण है और आनन्द इसका गुण है। ऐसे आनन्द की प्राप्ति ही हर साधक का लक्ष्य होता है। यह आनन्द कोई बाहर की वस्तु नहीं है। जब हमारे विषय-कषायादि भावों का अभाव हो जाता है, तो आत्मा अपने स्वाभाविक रूप में आ जाती है और आनन्द प्रकट हो जाता है। सांसारिक सुख विषय जन्य है और जड़ आश्रित है, अतः वह संयोग पर निर्भर है। आनन्द आत्मा का गुण है जो शाश्वत है। आत्मा से राग-द्वेष का पर्दा हटते ही वह प्रकट हो जाता है।

आचार्यदेव ने सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन एवं सम्यक् चारित्र की आराधना से अपने आत्मगुणों का अनुभव कर लिया था। जड़ पदार्थों में और 'पर' भावों में उनकी बुद्धि नहीं रही। उनके पदों में भी उनकी आत्मानुभूति की गहरी अभिव्यंजना हुई है। यह आत्मबोध उन्हें सद्गुरु की कृपा से मिला। इसीलिये वे कहते हैं-

सतगुरु ने यह बोध बताया, नहीं काया नहीं माया तुम हो।
सोच समझ चहुँ ओर निहारो, कौन तुम्हारा अरु को तुम हो।।
जीव, ब्रह्म, आतम अरु हंसा, चेतन पुरुष रूह तुम ही हो।
नाम रूपधारी नहीं तुम हो, नाम वाच्य फिर भी तो तुम हो।। **(पद संख्या 2)**

इसी पद में वे आगे कहते हैं- ''हे आत्मन्! तुम रूप, रंग, गंध, वर्ण और स्पर्श भी नहीं हो, अतः अपने स्वरूप को पहचानो।'' यह दुर्लभ अवसर मिला है। वे अपनी आत्मा से कहते हैं-

समझो चेतन जी यह रूप, जो अवसर मत हारो।
पुण्य पाप का तू है कर्त्ता, सुख दुःख फल का भी तू भोक्ता।
तू ही छेदनहार, ज्ञान से तत्त्व विचारो।। **(पद संख्या 3)**

आत्म स्वरूप का जब भान हो जाता है तो आत्मा से प्रीति गाढी हो जाती है तब हृदय आनन्द धारा में बहकर कह उठता है- *मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश।* (पद संख्या 5)। ज्ञान का प्रकाश होने से उन्होंने जान लिया कि-

तन-धन परिजन सब ही पर हैं, पर की आश निराश।
पुद्गल को अपनाकर मैंने, किया स्वत्व का नाश।।
ममता से संताप उठाया, आज हुआ विश्वास।
भेदज्ञान की पैनी धार से, काट दिया वह पाश।।
मोह मिथ्यात्व की गांठ गले तब, होवे ज्ञान प्रकाश।
'गजमुनि' देख अलख रूप को, फिर न किसी की आश।। (पद संख्या 5)

कवि का मनोभाव जब अनुभूति में ढ़ल गया तो वह एक दिव्य संगीत के रूप में फूट पड़ा। अध्यात्म जगत् की यह एक कालजयी मनोरम रचना बन गई, जिसमें आचार्यदेव के अनुभवों की प्रभावपूर्ण प्रस्तुति हुई है। महान् अध्यात्म योगी आनन्दघनजी के पदों में भी ऐसी ही अनुभूति झलकती है। आचार्यदेव का यह पद, भाव और लय की दृष्टि से गायक और श्रोता दोनों को आत्म-विभोर कर देता है। मिथ्या धारणाओं की दाह जब शान्त हो जाती है तब आनन्द की घटाएँ आत्माकाश में छा जाती हैं, उसी की मार्मिक अभिव्यक्ति का यह शब्द चित्र है।

आत्म-स्वरूप का भान होने पर कवि उस अवस्था में पहुँच जाता है जब वह बरबस कह उठता है-

मैं तो उस नगरी का भूप, जहाँ नहीं होती छाया धूप।
श्रद्धा नगरी वास हमारा, चिन्मय कोष अनूप।
निराबाध-सुख में मैं झूलूँ, मैं सत् चित् आनन्द रूप।। (पद संख्या 6)

आत्म साक्षात्कार के बाद ही ऐसी रचना सम्भव हो पाती है। इस पद में वस्तु तत्त्व को स्वानुभूति के साथ प्रतिपादित करने में जो रूपक का प्रयोग किया है वह कितना सटीक हैं। वे कहते हैं- मैं उस नगरी का स्वामी हो गया हूँ जहाँ न छाया है न धूप, यानी जहाँ न सुख है न दुःख है, केवल आनन्द ही आनन्द है।

आचार्य देव ने अपने जीवन में अध्यात्म-साधना के आदर्शों की अवतारणा की और आत्म स्वातन्त्रय का लाभ लिया। ये पद उसी की फलश्रुति हैं। आत्मिक आनन्द का जो झरना उन्होंने इन पदों में बहाया है, वह युगों-युगों तक साधकों की अध्यात्म पिपासा को शान्त करता रहेगा। (क्रमशः)

-14, वरदान अपार्टमेंटस, 64, इन्द्रप्रस्थ एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

तत्त्वबोध

जिज्ञासा-समाधान

संकलित

(इ) उत्तराध्ययन सूत्र में चारों अनुयोगों का समावेश किस प्रकार होता है?

उत्तर– 'अनुयोग' 'अनु' और 'योग' शब्दों का यौगिक रूप है। इसका सामान्य अर्थ है शब्द का उसके अर्थ के साथ योग-सम्बन्ध जोड़ना। लेकिन प्रत्येक शब्द मूल में एक होते हुए भी अनेकार्थक है। अतः यथाप्रसंग शब्द और निश्चित अर्थ की संयोजना अनुयोग कहलाता है। अनुयोग अर्थात् व्याख्या। व्याख्येय वस्तु के आधार पर अनुयोग के चार विभाग किये गये हैं– 1. चरणकरणानुयोग, 2. धर्मकथानुयोग, 3. गणितानुयोग और 4. द्रव्यानुयोग।

1. चरणानुयोग– ''गृहमेध्यनगाराणं चारित्रोत्पत्तिवृद्धिः रक्षाङ्गम् चरणानुयोगः समयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति।'' गृहस्थ व मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का विधान करने वाले अनुयोग को चरणानुयोग कहते हैं, जैसे उपासकदशाङ्ग आदि।

2. धर्मकथानुयोग– 'धम्मकहा नाम जो अहिंसादिलक्खणं सव्वण्णुपणीयं, धम्मं अणुयोगं वा कहइ एसा धम्मकहा' सर्वज्ञोक्त अहिंसा आदि स्वरूप धर्म का जो कथन किया जाता है अर्थात् जिस धर्म में व्याख्या की जाती है वह धर्मकथानुयोग है, जैसे-ज्ञाताधर्मकथांग आदि।

3. द्रव्यानुयोग– 'जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बंधमोक्षौ च, द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्या लोकमाननुते।' जो श्रुतज्ञान के प्रकाश में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष आदि तत्त्वों को दीपक के सदृश प्रकट करता है वह द्रव्यानुयोग है अथवा जिन सूत्रों में धर्मादिद्रव्यों का विवेचन किया जाता है, वह द्रव्यानुयोग है।

4. गणितानुयोग– तिथि, नक्षत्र, योग और मुहूर्त्तादि का जिसमें विचार किया जाता है, उसे गणितानुयोग कहते हैं। जैसे सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि सूत्र।

आगम साहित्य में कहीं संक्षेप से, कहीं विस्तार से इन अनुयोगों का वर्णन है। आर्य वज्र तक अनुयोगात्मक दृष्टि से पृथक्ता नहीं थी। प्रत्येक सूत्र की चारों अनुयोगों द्वारा व्याख्या की जाती थी। यह व्याख्या पद्धति बहुत ही क्लिष्ट और स्मृति की तीव्रता पर अवलम्बित थी। दूरदर्शी आर्यरक्षित ने गंभीरता से चिंतन कर जटिल व्यवस्था को सरल बनाने हेतु आगम-अध्ययन को चारों अनुयोगों में विभक्त

किया। विक्रम की पहली शताब्दी में आर्यरक्षित सूरि ने ही उत्तराध्ययन सूत्र को धर्मकथानुयोग में स्थान दिया था। किंतु यह वर्गीकरण सिर्फ धर्मकथाओं की प्रधानता, विपुलता के कारण ही किया गया था। वर्तमान में उपलब्ध प्रत्येक आगम के समान उत्तराध्ययन में भी चारों अनुयोगों के पाठ मिलते हैं। उत्सर्ग मार्ग को अवलम्बन करके ही उत्तराध्ययन को धर्मकथानुयोग में सम्मिलित किया गया है। अपवाद मार्ग में तो प्रत्येक सूत्र में चारों अनुयोगों का वर्णन विद्यमान है। भगवान महावीर की वाणी स्याद्वादयुक्त एवं चिंतन अनेकान्त युक्त था। अतः एक आगम तो क्या उसकी एक-एक गाथा में भी चारों अनुयोग घटित किये जा सकते हैं। प्रधानता की दृष्टि से चार अनुयोगों में उत्तराध्ययन के अध्ययनों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है:- **धर्मकथानुयोग:-** 7,8,9,12,13,14,18,19,20,21,22,23, 25,27 वां अध्ययन, **चरणानुयोग:-** 2,11,15,16,17,24,26,32,35 तथा अपेक्षा से 1,4,5,6 वां अध्ययन, **द्रव्यानुयोग:-** 28,29,30,31,33,34,36 एवं अपेक्षा से तीसरा अध्ययन भी, **गणितानुयोग:-** स्थिति आदि की अपेक्षा से 10, 25,28,33,34,36 वां अध्ययन

अतः उत्तराध्ययन सूत्र चारों अनुयोगों का संगम है।

(ई) क्या दीक्षा स्वीकार करने से अनाथता समाप्त हो जाती है?

उत्तर-दीक्षा ग्रहण करने वाले के भीतर में आत्म-भाव का कमल खिलता है। साधक का जीवन उसकी अद्वितीय गंध से परिवेष को भी महका देता है। अतः उत्तराध्ययन सूत्र के 20 वें अध्ययन में यही भावधारा बह रही है। अनाथ से सनाथ बनने की विधि कह रही है। राजा श्रेणिक मुनि की अद्वितीय रूप सम्पदा को देखकर आश्चर्य चकित हो जाते हैं। ध्यान कोष्ठक से बाहर आए मुनि, श्रेणिक की जिज्ञासाओं का अंत करते हैं तथा पहला शब्द "अणाहो मि महाराय" प्रयोग करते हैं। संयम नरेश, मगध नरेश को सनाथता-अनाथता का अर्थ स्पष्ट करते हैं कि धन, दौलत, माता-पिता, भाई भगिनी, पत्नी, परिवार इनकी प्राप्ति से कोई सनाथ नहीं होता है। सांसारिक दृष्टि से यह सनाथता हो सकती है, पर आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित मुनि कहते हैं- जब मेरी आँखों में प्रचण्ड वेदना हुई थी तब कोई भी सांसारिक चीज, नाती-रिश्ते उसके समाधान में योग सिद्ध नहीं हुए। सभी दिशाओं से निराश मुनिधर्म की शरण में जाते ही, मात्र एक रात्रि में मेरी सारी वेदना नष्ट हो गई और प्रातः काल अणगार धर्म को स्वीकार कर लिया। "ततोहं नाहो जाओ अप्पणस्स परस्स य, सव्वेसिं चेव भूयाणं

तसाणं थावराण य।''-20.33। हे भूपाल! प्रव्रज्या अंगीकार करने के बाद मैं अपना और दूसरों का, त्रस और स्थावर प्राणियों का नाथ हो गया। स्व का नाथ ही पर का नाथ होता है। इन्द्रिय और मन को वश में कर लेने वाला स्व का नाथ होता है अर्थात् जीव जब इनका व सांसारिक पदार्थों की दासता के त्याग का शंखनाद कर देता है तब वह अपना नाथ बन जाता है। अपने सिवाय अपनी पूर्ति इस संसार में कोई नहीं कर सकता। इसी प्रकार स्व के सिवाय स्व का नाथ कोई नहीं बन सकता है। जब आत्मा इन्द्रियोन्मुखी होती है तो इन्द्रियाँ आत्मा की नाथ बनती हैं और जब आत्मा इन्द्रियों का दमन करती है तो यह स्वयं नाथ बन जाती है। आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र सम्पदा से युक्त होती है, परन्तु उपयोग पर द्रव्य में लगे होने से यह अनाथ बनी रहती है। यह सच है कि अलब्ध रत्नत्रय के लाभ से एवं लब्ध रत्नत्रय के प्रमाद परिहार पूर्वक परिरक्षण से जीव अपना नाथ बन जाता है।

दीक्षा के बाद नाथ कैसे बन जाते हैं? इस संदेह की निवृत्ति हेतु योगीश्वर अनाथी मुनि कहते हैं कि उद्धत आत्मा नरक का हेतु होने से वैतरणी नदी के समान है, पीड़ाजनक होने से शाल्मली वृक्ष जैसी है। सुपथ पर प्रवृत्त यही आत्मा अभिलषित स्वर्ग एवं अपवर्ग के सुखों को देने वाली होने से कामधेनु है। यह चित्त-आह्लाद-कारक होने से नंदनवन के समान है। सुख और दुःखों का कर्त्ता-भोक्ता यह आत्मा ही है। दुराचरण में फँसी आत्मा जब सदाचरण का सेवन करने लग जाती है तब अभिलषित पदार्थ का हेतुक होने से अपने आपका मित्र बन जाती है। आत्मा में सदाचरण की तल्लीनता, प्रव्रज्या को अंगीकार करने पर ही आती है। अतः दीक्षा के बाद ही सनाथता प्रकट होती है। दीक्षा लेने के बाद जीव स्व का ही नहीं, दूसरे जीवों का भी नाथ बन जाता है। क्योंकि वास्तविक सुख जिन्हें अप्राप्त है, उन्हें प्राप्त कराता है और जिन्हें प्राप्त हैं उन्हें रक्षणोपाय बताता है। त्रस-स्थावर जीवों का शरणदाता, त्राता, धर्ममूर्ति, संयमी साधु योग क्षेमकरण में सामर्थ्ययुक्त हो सकने के कारण नाथ बन जाता है। जिसे स्व पर विश्वास जग जाता है, वह स्व-पर का नाथ बन जाता है।

आगे प्रश्न होता है कि, तो क्या साधु बन जाने के बाद सभी सनाथ बन जाते हैं? तो कहना होगा, नहीं। जो साधु बनकर अपने ग्रहण किये हुए व्रतों का यथा-विधि पालन नहीं करता वह अनाथता की कोटि में ही आता है। मुनि ने अनाथता के और भी लक्षण बताये हैं- जैसे कि महाव्रतों को स्वीकार तो कर लेता है, किंतु सम्यक् रीति से पालन नहीं करता, इन्द्रिय निग्रह नहीं करता, रसों में गृद्ध व लोलुपी बनकर खाने में आसक्त रहता है। महान् कियोद्धारक आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. ने

आचार छत्तीसी में फरमाया है-

''ताक-ताक जावे गोचरी, लावे ताजा माल।
संयम ऊपर चित्त नहीं, बन रह्यो कुंढो लाल।।
यो मारग नहीं साधु रो।।''

राग-द्वेष आदि बंधनों का, साधु बनकर भी जो उच्छेद नहीं करता वह अहिंसा आदि व्रत, अनशन आदि तपस्या को ग्रहण करके भी उससे भ्रष्ट हो जाता है। माथा मुँडा कर भी मन नहीं मुँडाता, केवल बहुरूपिया की तरह वेष परिवर्तन कर जीविका चलाता है वह नाथ नहीं बनता। याद रखना- ''बाना बदला सौ-सौ बार, पर बाण बदले तो खेवा पार।'' सिर्फ बाना बदलने वाला अनाथ ही है। जो लक्षण निमित्त कौतुक, वैद्यक आदि विद्याओं का प्रयोग करके जीविका चलाता है, जादू आदि का खेल दिखाकर आजीविका चलाता है। अनेषणीय, अप्रासुक आहार-पानी में अत्यन्त आसक्त रहता है। संयमी और ब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी अपने को संयमी और ब्रह्मचारी बताता है- ये सब अनाथताएँ हैं। इन अनाथताओं का दुष्परिणाम भी मुनि ने साथ-साथ राजा श्रेणिक को बता दिया।

पहनावे का अंतर

श्री गणेशमुनि शास्त्री

जनरल नॉलेज की
मौखिक परीक्षा में
मास्टर ने
विद्यार्थी से पूछा-
बताओ,
वकील और डॉक्टर में
क्या अंतर है?
विद्यार्थी ने
दिमाग लड़ाया,
फिर बताया-
सर! वकील
काला कोट पहनकर
सफेद झूठ का
दम भरता है,
जबकि डॉक्टर
सफेद कोट पहनकर
भ्रूण हत्या जैसे
काले कारनामे
करता है।
करनी की दृष्टि से
दोनों का एक ही
मूल मंतर है,
यदि रंग की
बात करें तो
दोनों के पहनावे में
रात-दिन का
अंतर है।

श्री महावीराय नमः

जय गुरु हीरा श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः जय गुरु मान

बेंगलोर में

जैन भागवती दीक्षा-महोत्सव

आदरणीय धर्मप्रेमी बन्धुवर,

सादर जय जिनेन्द्र !

आपको सूचित करते हुए परम प्रसन्नता है कि आगमज्ञ,प्रवचन-प्रभाकर, व्यसन मुक्ति के प्रबल प्रेरक, परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 **श्री हीराचन्द्र जी म.सा.** की आज्ञा से तथा आत्मार्थी शान्त-दान्त-गम्भीर, प्रबल पुरुषार्थी, परमश्रद्धेय उपाध्याय प्रवर पं. रत्न **श्री मानचन्द्र जी म.सा.** की मंगल मनीषा से एवं साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती **श्री मैनासुन्दरीजी म.सा.** के शुभाशीर्वाद से बैंगलोर में

मुमुक्षु बहिन सुश्री माला जी जैन

की जैन भागवती दीक्षा

वि.सं. 2070 माघ शुक्ला दशमी, रविवार, दिनांक 09 फरवरी, 2014 को

अग्रांकित कार्यक्रमानुसार सम्पन्न होगी।

व्याख्यात्री महासती **श्री ज्ञानलता जी म.सा.**, तपाराधिका महासती **श्री चारित्रलता जी म.सा.** आदि ठाणा 12 के पावन सान्निध्य में आयोजित दीक्षा-महोत्सव कार्यक्रम में व्रत-नियमयुक्त श्रद्धा समर्पित कर दीक्षा की अनुमोदना का लाभ प्राप्त करें।

विनीत

मोफतराज मुणोत	ज्ञानेन्द्र बाफना	पी.शिखरमल सुराणा	आनंद चौपड़ा	राजेन्द्र चोरड़िया
संयोजक संरक्षक मण्डल	अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महामंत्री	क्षेत्रीय प्रधान-कनार्टक सम्भाग

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

आयोजक

यशवन्तराज सांखला	पदमराज मेहता	निर्मलकुमार बम्ब
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मंत्री

श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, बेंगलोर

निवेदक

वीर परिवार

कैलाशचन्द, नरेन्द्रकुमार, विमलकुमार, निर्मलकुमार, दिनेशचन्द जैन (फाजिलाबाद वाले)

हिण्डौनसिटी (राज.)

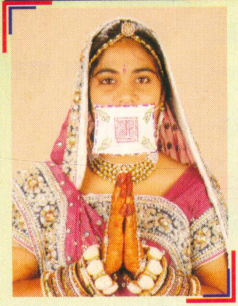

मुमुक्षु बहिन

सुश्री माला जैन : परिचय

जन्मतिथि– 23 मई 1995

जन्मस्थान– हिण्डौनसिटी,जिला–करौली(राज.)

व्यावहारिक शिक्षा–बी.ए.(द्वितीय वर्ष)

पारिवारिक परिचय

दादा–दादी	:	वीर पिता स्व. श्री प्रभूदयालजी–वीर माता स्व. श्रीमती तारादेवीजी जैन
बड़े पिता–माता	:	श्री कैलाशचन्दजी–शंकुतलाजी जैन, श्री नरेन्द्रकुमारजी–सावित्रीजी जैन श्री विमलकुमारजी–सुधाजी जैन
पिता–माता	:	श्री निर्मलकुमारजी–रेखा जी जैन
दीक्षित भुआ	:	परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर 1008 पूज्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. की सुशिष्या तपाराधिका महासती श्री चारित्रलता जी म.सा.
चाचा–चाची	:	श्री दिनेशचन्दजी–ममताजी जैन
फूफासा–भुआसा	:	श्री महावीरप्रसादजी–कान्ताजी जैन, श्री सुरेशचंदजी–सुशीलाजी जैन श्री हेमेन्द्रकुमारजी–राजुलजी जैन, श्री मनोजकुमारजी–मंजूजी जैन
भाई–भाभी	:	श्री शैलेन्द्रकुमारजी–सुलेखा जी जैन, श्री अजीतकुमारजी–उषा जी जैन, श्री लोकेशकुमारजी–पूजा जी जैन, श्री सचिनकुमारजी–सोनल जी जैन, श्री नितिनकुमारजी–शिल्पा जी जैन, श्री हितेशजी, संयमजी,सारांशजी जैन
बहन	:	सुश्री सुरभि जी जैन
भतीजा–भतीजी	:	श्री स्पर्श,अभिनव,विभू, श्रद्धा, आशी, रिद्म,निशि,आदिया, काव्या जैन
मामा–मामी	:	श्री प्रकाशचन्दजी–पुष्पाजी जैन, मौसाजी– श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन

धार्मिक अध्ययन

आगम कण्ठस्थ	:	पुच्छिस्सुणं, दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र 24 अध्ययन, अणुत्तरोववाईसूत्र, आवश्यकसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र।
स्तोक	:	जैन आगम स्तोक, वारिधि पाठ्यक्रम प्रथम व द्वितीय भाग, लघुदण्डक, गुणस्थान, 33 बोल, छः काया, छः आरा का थोकड़ा, 98 बोल का बासठिया, द्रव्येन्द्रिय का थोकड़ा, 800 बोल की बंधी, 50 बोल की बंधी, लाखों की गतागत, आत्मा का थोकड़ा, विरहद्वार।
स्तोत्र कंठस्थ	:	भक्तामर, कल्याणमंदिर, महावीराष्टक, चउशरण पइण्णा, संस्थार पोरसी।
भाषा ज्ञान	:	हिन्दी, अंग्रेजी।
धार्मिक परीक्षा	:	शिक्षणबोर्ड वर्ष प्रथम एवं द्वितीय

वैराग्यावधि : एक वर्ष

दीक्षा-महोत्सव-कार्यक्रम

वि.सं. 2070 माघ शुक्ला नवमी, शनिवार, 08 फरवरी, 2014

अभिनन्दन-समारोह : वीर परिवार एवं दीक्षार्थी का

समयः प्रातः 10.00 बजे से

स्थानः धर्मशाला महावीर सेवा सदन, बेंगलोर

अध्यक्षता : श्री पी. शिखरमल सुराणा

(कार्याध्यक्ष, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

मुख्य अतिथि : न्यायमूर्ति माननीय श्री अजितकबीनजी जैन

(सेवानिवृत न्यायाधीश, कर्नाटक उच्च न्यायालय)

विशिष्ट अतिथि : माननीय डॉ. सी.आर. छल्लाणी M.B.B.S.,M.S.,F.I.C.S.,F.A.C.S.

(वरिष्ठ चिकित्सक भगवान महावीर जैन अस्पताल)

वि.सं. 2070 माघ शुक्ला दशमी, रविवार, 09 फरवरी, 2014

अभिनिष्क्रमण यात्रा : प्रातः 7.30 बजे वीर परिवार के अस्थायी निवास स्थान Kota Badrinarayan Vasantha Nilaya, 33/1, National High School Road, Near Dharamshala Mahaveer Seva Sadan, V.V. Puram, Bangalore से प्रस्थान कर दीक्षा स्थल पर पहुँचेगी, जहाँ व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा., तपाराधिका महासती श्री चारित्रलता जी म.सा. आदि महासतीवृन्द के पावन सान्निध्य में दीक्षा-महोत्सव कार्यक्रम प्रारम्भ होगा।

दीक्षा-विधि शुभारम्भ- प्रातः 08.45 बजे लगभग-व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा. के मुखारविन्द से।

दीक्षा-स्थल- धर्मशाला महावीर सेवा सदन, नं.23, नेशनल हाई स्कूल रोड़, लाल बाग वेस्ट गेट, कामत होटल रोड़, वासवी कल्याण मण्डप के पास,बेंगलोर-560004

आवश्यक निवेदन

1. दीक्षा-महोत्सव की जानकारी सकल श्री संघ एवं क्षेत्र में रहने वाले श्रावक-श्राविकाओं तक पहुँचाने का लक्ष्य रखें।
2. दीक्षा-महोत्सव पर पधारने वाले श्री संघों एवं श्रद्धालुओं को व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा., तपाराधिका महासती श्री चारित्रलताजी म.सा. आदि महासतीवृन्द के दर्शन-वन्दन, प्रवचन-श्रवण एवं सत्संग-सेवा का लाभ प्राप्त होगा।

3. दीक्षा-महोत्सव प्रसंग पर 7,8,9 फरवरी को महासती मण्डल के कानूगा गार्डन, 16-कृष्णा रोड़, प्रधान डाकघर के पास, वसवनगुड्डी, बेंगलोर विराजने की संभावना है।
4. दीक्षा-महोत्सव पश्चात् भोजन व्यवस्था दीक्षा-स्थल पर रखी गई है।

दीक्षा-समिति

श्री कांतिलाल जी चौधरी, धुलिया, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष-अ.भा.रत्नसंघ, 98231-72765
श्री बुद्धिप्रकाश जी जैन, कोटा, राष्ट्रीय मंत्री-अ.भा. रत्नसंघ, 94141-77139

वीर परिवार, सम्पर्क-सूत्र

स्थायी निवास- श्री नरेन्द्रकुमारजी, निर्मलकुमारजी जैन, टेलीफोन एक्सचेंज के पास, सिद्धार्थ नगर, हिण्डौनसिटी-322230, जिला-करौली (राज.)

अस्थायी निवास-Kota Badrinarayan Vasantha Nilaya, 33/1, National High School Road, Near Mahaveer Seva Sadan Dharamshala, V.V. Puram, Bangalore-560004 (Kan.)

सम्पर्क सूत्र :

श्री कैलाशचन्दजी जैन- 94626-63311 श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन- 94147-29022
श्री निर्मलकुमारजी जैन- 82902-98204 श्री दिनेशजी जैन- 94149-21787

सम्पर्क सूत्र :

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर- 2641445/2636763
श्री मानेन्द्रजी ओस्तवाल- राष्ट्रीय संयुक्त महामंत्री,अ. भा. रत्नसंघ- 94141-32521
श्रीमती मंजुजी भण्डारी-कार्याध्यक्ष, अ.भा.श्राविका मण्डल- 93426-77066
श्री राजेन्द्रकुमारजी चोरडिया-क्षेत्रिय प्रधान, कर्नाटक संभाग- 98450-14684
श्री गौतमचन्दजी भण्डारी- राष्ट्रीय सहमंत्री अ.भा.रत्नसंघ- 90083-55550
श्री भोपालचन्दजी पगारिया-संयोजक दीक्षा आयोजन समिति- 94494-25535
श्री छगनमलजी लुणावत-सहसंयोजक दीक्षा आयोजन समिति- 98450-05130
श्री धनरूपचन्दजी मेहता- सहसंयोजक दीक्षा आयोजन समिति- 93412-21084
श्री यशवन्तराजजी सांखला- अध्यक्ष-रत्नसंघ, बैंगलोर-98450-19669
श्री निर्मलकुमारजी बम्ब- मंत्री-रत्नसंघ, बैंगलोर-94496-49577
श्रीमती प्रमिलाजी भण्डारी- अध्यक्ष, श्राविका मण्डल, बेंगलोर- 98450-00236
श्रीमती अनुपमाजी मरलेचा- मंत्री, श्राविका मण्डल, बेंगलोर- 95901-12388
श्री प्रमोदजी सिंघी- अध्यक्ष युवक परिषद्, बेंगलोर- 93412-38079
श्री वेदान्तजी सांखला- मंत्री, युवक परिषद्, बेंगलोर- 90197-16290
श्रीमती रेखाजी मेहता- अध्यक्ष, बहू बालिका मण्डल, बेंगलोर- 99001-52457

नववर्ष पर विशेष

नव वर्ष में अपनाएँ प्रेरक नव संकल्प

श्री नितेश नागोरा जैन

नव वर्ष के आते ही कैलेंडर बदल जाते हैं। तारीखों के पन्ने और डायरियां बदल जाती हैं। वस्तुत: नव वर्ष के अवसर पर विश्व के हर कोने में धूमधाम प्रारम्भ हो जाती है। होटलें और रेस्टोरेंट सजते हैं। नये-नये आकर्षण व प्रलोभन ग्राहकों को दिये जाते हैं। नव वर्ष में विभिन्न कंपनियाँ ग्राहकों को लुभाने के लिए नई-नई स्कीम और आफर देती हैं। कई कंपनियों द्वारा अपने डीलरों को नव वर्ष के भी उपहार दिये जाते हैं। वस्तुत: नव वर्ष को मनाने का सभी का अपना-अपना अंदाज होता है। कोई नाच-गाकर, तो कोई पार्टी मनाकर, कोई पटाखों के सहारे तो कोई ढ़ोल-नगाडों के सहारे, कोई पिकनिक से तो कोई फिल्म थियेटर के माध्यम से। दुनिया के हर कोने में सभी लोग मौज-मस्ती,आनंद और धूम-धाम से अपनी-अपनी तरह से नव वर्ष को मनाते हैं, किंतु नव वर्ष के जितने भी तरीके पूरे विश्व में अपनाये जाते हैं आमोद-प्रमोद के उन सभी तरीकों एवं प्रवृत्तियों का असर या तो कुछ मिनटों का होता है या कुछ घंटों का, किंतु यहाँ नव वर्ष के उपलक्ष्य में जो छोटे-छोटे से निवेदन किये जा रहे हैं, यदि पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से इन्हें जीवन-व्यवहार में अपनाया जाये तो इनका प्रभाव भव-भव तक रह सकता है। आइये! नव वर्ष के मंगलमय अवसर पर कुछ मंगल, शुभ, पवित्र और प्रेरक चिंतन करते हैं। निज जीवन को प्रेरक व आदर्श बनाने के लिए कुछ प्रेरक संकल्प अपनाते हैं।

1. हर माह एक सद्गुण जीवन-व्यवहार में अपनायें- ज्ञानियों का कथन है कि बूँद बूँद से घड़ा भरता है। ठीक इसी प्रकार से हमें भी नव वर्ष के मंगलमय अवसर पर सद्गुणों की ओर ग्राहक दृष्टि बनाकर हर माह एक नया सद्गुण अपने जीवन व्यवहार में अपनाना है। उदाहरणार्थ प्रथम माह हम पहला सद्गुण अपने अन्तर में अपनायें कि मैं दूसरों की निंदा करने से बचूँगा। अब चाहे घर हो या समाज, आफिस हो या फैक्ट्री, हर जगह हम नियमित रूप से दूसरों के दुर्गुण देखने की अपेक्षाकृत सद्गुण या विशेषता देखेंगे तो सहज ही उनकी निंदा, बुराई व ईर्ष्या की अग्नि से बच जायेंगे। ऐसा करने से एक ओर जहां हमारी आत्मिक शांति बढ़ेगी वहीं दूसरी ओर पुण्यवानी का अर्जन होगा और ग्राहकदृष्टि के कारण हमारे जीवन-व्यवहार में भी सद्गुणों की वृद्धि होगी।

जिस प्रकार से ईंट से ईंट जोड़कर ईमारत बनती है, कड़ी से कड़ी जुड़कर जंजीर और

सूत से सूत मिलकर धागा बनता है; ठीक उसी प्रकार विनय,सरलता, पापभीरूता, कंठस्थ ज्ञान, सहयोग, उदारता, करुणाशीलता, विवेकवृत्ति आदि एक-एक सद्गुण के जीवन में बढ़ने से हम गुणवान और प्रेरक बन सकते हैं। आवश्यकता है नव वर्ष के मंगलमय अवसर पर दृढ़तापूर्वक यह संकल्प अपनाने की और गुणवान बनने की।

2. वैर-विरोध वृत्ति को घटायें, संगठन, एकता, सहयोग भाव बढ़ायें- संघ, समाज और परिवार में रहने वाले हम सभी लोग छदमस्थ हैं और गलतियां छदमस्थों से ही होती हैं। ऐसे में किसी भी विषम परिस्थिति को लेकर आपसी खींचतान, वैर-विरोध की प्रवृत्ति स्वयं व औरों की धर्म भावनाओं को घटाने वाली प्रवृत्ति है और एक साधक को अपने संपूर्ण जीवनकाल में ऐसा प्रयास करना है कि जिससे लोग धर्म के सम्मुख हों धर्मानुरागी हों। ऐसी स्थिति में हमें अपनी भूमिका पर विचार करना है कि घर-परिवार और समाज में रहते हुए हमारी भूमिका कैसी है?

दिल्ली के प्रगति मैदान में कैकड़ों का प्रदर्शन किया गया। विश्व के अलग-अलग कोने से कैंकड़े मंगवाये गये। सभी कैंकड़ों को जार में बंद करके ऊपर ढक्कन लगाया गया, किंतु भारत के कैंकड़ों को जार में बंद करके ऊपर का ढक्कन नहीं लगाया गया। कैंकड़ों को देखने भारत के नेता आये...सभी देशों के कैंकड़ों को देखने के बाद उन्होंने भारत के कैंकड़ों का जार देखा और ड़र कर पीछे हट गये। तब मार्गदर्शक व्यक्ति ने कहा- घबराइये नहीं, ये कैंकड़े आपको कांटेंगे नहीं। नेताजी ने पूछा क्यों? अनुभवी ने कहा- ये जार में से बाहर निकलेंगे तब ही तो काट पायेंगे। नेताजी ने कहा- जार का ढक्कन तो खुला है। बाहर आने में कठिनाई कैसी? मार्गदर्शक व्यक्ति ने कहा- ये भारत के कैंकड़ें हैं। एक दूसरे से इतनी ईर्ष्या व झगड़ा करते हैं कि जब तक और कैंकड़ें जार में हैं तब तक किसी कैंकड़े की हिम्मत नहीं कि वह बाहर निकल जाये। एक बाहर निकलेगा तो दूसरा नीचे गिरा देगा। दूसरा निकलेगा तो तीसरा और तीसरे को चौथा अर्थात् सभी कैंकड़े एक दूसरे की खींचतान में इतने एक्सपर्ट हैं कि कोई बाहर निकल ही नहीं सकता है। सोचिये, घर-परिवार और संघ समाज में क्या हमारी स्थिति इसी तरह की है? हम भी कहीं अपने ही अपनों को तो नहीं काट रहे हैं? अपने ही अपनों से द्वेष व ईर्ष्या तो नहीं बढ़ा रहे हैं....? यदि हाँ तो हम इन सभी के व्यर्थ कर्मों का भार भी बढ़ा रहे हैं। आवश्यकता है सम्यक् चिंतन मनन की, जीवन में सहयोग, एकता, संगठन आपसी एकजुटता की। इसीसे हमारा और संघ समाज व जिनशासन का भला व विकास संभव है।

3. शब्दों से नहीं, आचरण से गुरु व जिनवाणी के प्रति भक्ति बतायें- स्तवन, लेख और वक्तव्य के माध्यम से गुरु एवं जिनवाणी के प्रति भक्ति को प्रदर्शित करना सरल

है, आचरण, आज्ञापालन, आत्मिक सजगता, दृढ़ता, समर्पण से उनके प्रति भक्ति को प्रदर्शित करना कठिन है। इस नव वर्ष में हमें गुरु आज्ञा व जिनवाणी दोनों के प्रति समर्पित होना है। दृढ़ता पूर्वक अनुशासन के प्रति समर्पित होकर अपनी आत्मिक सजगता और आत्मानुशासन से गुरु व जिनवाणी के प्रति सच्ची भक्ति को प्रदर्शित करना है। ध्यान रखें बनावटी, दिखावटी व मिलावटी गुरुभक्ति और जिनवाणी की इस तरह की उपासना स्वयं को ही भटकाने वाली है। जबकि बिना आग्रह और अहम् के विनय व समर्पणता के भावों से प्रकट होने वाली हमारी भक्ति हमारे भव-भ्रमण को कम कराने में सक्षम है। वस्तुत: हमें बहरूपिया नहीं आदर्श श्रमणोपासक बनना है। अब तक हम सभी अपने गुरुदेव और जिनवाणी पर नाज़ करते आये हैं। नव वर्ष में ऐसा दृढ़ संकल्प करें कि हमारे व्यक्तित्व-कृतित्व पर हमारे आराध्य मार्गदर्शक पूज्य गुरुदेव और जिनवाणी दोनों को नाज़ हो। स्मृति में रहें सदा ये पंक्तियां-

संयम अगर नहीं ले सको तो, दृढ़धर्मी श्रावक बनना ।
सूरज नहीं बन सकते हो तो, दीपक बनकर तुम रहना।।

4. बच्चों को साधन सुविधा के साथ संस्कार भी दीजिए- भौतिकता के इस दौर में हर माता-पिता अपनी संतान को अच्छी से अच्छी, ऊँची से ऊँची परवरिश देने की कोशिश करते हैं। स्वयं अनेक प्रकार के कष्ट सहन करते हैं, किंतु अपनी संतान को अधिक से अधिक साधन और सुविधा देने का प्रयास करते हैं। साधन-सुविधाओं की होड़ के साथ-साथ अपने कुल उजियारों को संस्कारों की विरासत देना भी परम आवश्यक है। प्राय: माता-पिता बच्चों को दिए जाने वाले साधनों और सुविधाओं के लिए जितने चिंतित नजर आते हैं, अपेक्षाकृत उन्हें दिये जाने वाले संस्कारों के प्रति उनका स्वयं का भी उपेक्षित नज़रिया रहता है। नव वर्ष के शुभ प्रसंग पर हम सभी को अपनी परवरिश शैली पर नज़र टिकाना है और बच्चों को साधन-सुविधा के साथ-साथ संस्कार भी देने हैं, क्योंकि धर्म और संस्कार ही जीवन की असली पूँजी हैं। संस्कारों की दौलत के बल पर ही हमारी भौतिक ऋद्धि व प्रतिष्ठा का सुरक्षित रहना संभव है।

5. आओ स्वयं से स्वयं की मुलाकात करें- भाग-दौड़ की इस जिंदगी में आज इंसान के लिए, ग्राहक के लिए, रिश्तेदारों के लिए, पार्टी के लिए, प्रचार के लिए सभी के लिए समय है, किंतु स्वयं के लिए उसके पास समय का अभाव है। यही अभाव हमारे प्रभाव को कम करने का मूल कारण है। ज्ञानीजन बार-बार शिक्षा रूप में यही फरमाते हैं-

जमाने में उसने बड़ी बात करली,
जिसने स्वयं से मुलाकात करली ।

आओ हम भी एक बड़ी बात करलें,
स्वयं से स्वयं की मुलाकात करलें।।

नव वर्ष के मंगलमय अवसर पर हम सभी को स्वयं के द्वारा स्वयं का निरीक्षण करना है। फर्मों की आडिट कई बार कराई है। दूसरों का लाभ-हानि कई बार चैक किया है, किंतु स्वयं की आत्मिक स्थिति क्या है, यह अंकेक्षण का विषय है। अत: नव वर्ष के अवसर पर चिंतन करें कि सभी अनुकूलताओं को प्राप्त करके क्या मैं इनका सम्यक् लाभ ले रहा हूँ? छोटे से सफर की इतनी तैयारियां करता हूँ फिर अगले भव की मेरी क्या तैयारी है? मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? मैं अपनी आत्मिक उन्नति हेतु क्या कुछ कर पा रहा हूँ? मेरा कितना समय पाप में और कितना समय पुण्य एवं संवर-निर्जरा की प्रवृत्ति में जा रहा है? सोचिये घर-दुकान का नौकर भी नियत समय पर कार्य करके चला जाता है, किंतु हम अपने लिए कितना समय निकाल पा रहे हैं, क्या हमारी स्थिति मजदूर की तरह है, जो दिन रात लदे रहते हैं संसार के कार्यों में। समझना यही है कि संसार का कार्य तो मेंढ़क के धड़े की तरह है जो कभी पूरा होने वाला नहीं है। हमे अन्तर में पाप भीरुता,परभव चिंतन और वैराग्य भाव बढ़ाकर आत्म-अवलोकन और आत्म-सुधार हेतु प्रयासरत रहना है, क्योंकि हमारे वर्तमान के आधार पर ही हमारे भविष्य का निर्माण होता है। अत: यदि हम सुन्दर और सुनहरा भविष्य चाहते हैं, सद्गति की चाहना रखते हैं तो वर्तमान में सम्यक् पुरुषार्थ परम आवश्यक है।

6. जीवन में व्रत-नियम अपनायें- अमर्यादित जीवन अर्थात् पाप ही पाप। मर्यादित जीवन का मतलब अल्प पाप। पाप कर्मों से बचाव का तात्पर्य है आत्मिक सुरक्षा। नव वर्ष के हर्ष भरे इस प्रसंग पर हमें लाभ-हानि का चिंतन करना है। अव्रतीपन में रहने से हानि है जबकि व्रत-नियम धारण करने से लाभ है। हम यह जानते हैं कि हमारे घर में चोर आने वाले नहीं हैं, किंतु फिर भी धन-आभूषण जोखिम को खुले आम नहीं रखकर तिजोरी में रखते हैं सुरक्षा के लिए। बैंक लॉकर का उपयोग करते हैं सुरक्षा के लिए । खेत में कांटों की बाड़ लगाते हैं सुरक्षा के लिए। बच्चों के पैरों में डोरी बांध देते हैं उनकी सुरक्षा के लिए। गाड़ी चलाते हुए गति पर नियंत्रण करते हैं सुरक्षा के लिए । ठीक इसी प्रकार से व्रत नियमों से आत्मिक सुरक्षा होती है। अत: अव्रतीपन को त्यागते हुए व्रतधारी श्रावक-श्राविका बनना है। नवकारसी, पौरसी, एकासन, बियासना, आयंबिल , चौदह नियम, बारह व्रत, छोटे-छोटे से प्रत्याख्यान ये सभी आत्म शक्ति को बढ़ाने के जरिए हैं, कर्म-निर्जरा के हेतु हैं, सम्यक् पुरुषार्थ हैं। वस्तुत: शारीरिक, मानसिक,आर्थिक और सामाजिक, धार्मिक सभी दृष्टिकोणों से व्रत-नियमों को धारण करना श्रेयस्कर है। अत: हमें बढ़ानी है आत्मिक

सजगता, घटाना है प्रमाद, अव्रतपन । वस्तुतः इसी समझ से जीवन में आत्मिक उन्नति और पग-पग पर सजगता व सुरक्षा संभव है।

7. प्रतिदिन आगम-पठन का संकल्प अपनायें- हम कम्प्यूटर, लेपटॉप, मोबाइल और दुनिया के नक्शे का ज्ञान रखते हैं। कहाँ क्या हो रहा है, देश-दुनिया की खबरों का ध्यान रखते हैं। कौनसी गाड़ी मार्केट में नई आई है, किसका क्या माइलेज है, इस बात का खयाल रखते हैं। कानून की जानकारी और कई प्रकार का नालेज रखते हैं, किंतु क्या जैन धर्म के अनुयायी होने के नाते हमें जैन सिद्धांतों की गहराईपूर्वक जानकारी है? क्या हम आगमकालीन श्रमणोपासकों की तरह ज्ञान और क्रिया को समर्पित जागृत श्रमणोपासक हैं? विचार हम सभी को करना है। श्रद्धा-भक्ति, सजगता और आत्मार्थीपन के विकास के लिए प्रतिदिन आगम के पठन-पाठन का शुभ संकल्प नव वर्ष के उपलक्ष्य में स्वीकार करना है, क्योंकि आगम हमारी अनमोल निधि है। हित-अहित की जानकारी प्रदान करने वाला ज्ञान का खजाना है। इस भव-परभव को सुधारने में सहायक है।

वीर लौंकाशाह और अनेक महापुरुषों ने समय और जीवन का बलिदान देकर यह आगम आज हम तक पहुंचाये हैं। अनेक आचार्यों, पूर्वाचार्यों व विद्वानों ने गहनतम श्रम करके मूल आगमों का हिन्दी में अनुवाद किया है। किंतु सोचिये, इतने बलिदान व पुरुषार्थ के बावजूद भी हमारी आत्म-जागृति व ललक कितनी है....? क्या हम प्रतिदिन अखबार व टी.वी. को जितना समय देते हैं उसका आधा समय भी आगम पढ़ने के लिए निकाल पा रहे हैं.....? नव वर्ष की पावन वेला में हमें अपने आत्मिक विकास व दृढ़ता के लिए प्रतिदिन कम से कम एक घंटा आगम पढ़ने का संकल्प करना है और मन में उठने वाली जिज्ञासाओं का पूज्य चारित्र आत्माओं से समाधान प्राप्त करके निःशंक मन से साधना पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ना है।

ध्यान रहे नव वर्ष के प्रसंग पर हम सभी को जीवन में हमेशा के लिए रहने वाले आध्यात्मिक और आत्मिक प्रकाश के लिए उक्त प्रेरक संकल्पों को नियम रूप में अपनाना है और निज जीवन को प्रेरक बनाना है। ध्यान रहे शेर का बच्चा शेर, हाथी का बच्चा हाथी और घोड़े का बच्चा घोड़ा ही होता है। वह आकार में छोटा हो सकता है, किंतु हाव-भाव उसी तरह का होता है। हम भी महावीर की संतान हैं, उनके मार्ग पर चलने वाले उन्हीं के अनुयायी हैं। हमें भी उनके जीवन व्यवहारों और सिद्धांतों को अपने सामने रखकर निज जीवन को प्रेरक व आदर्श बनाना है। अपने शुभ संकल्पों व दिशाबद्ध पुरुषार्थ से जिनशासन का गौरव बढ़ाना है।

- कर सलाहकार, 175-जैन बोर्डिंग एरिया, भवानीमंडी (राज.)

परिवार-स्तम्भ

कैसे बचें टूटते रिश्ते?

श्री पारसमल चण्डालिया

भारतीय संस्कृति की मान्यतानुसार पति-पत्नी का रिश्ता सात जन्मों का होता है। पति-पत्नी का रिश्ता एक रथ के दो पहियों के समान होता है। यदि रथ के दोनों पहिये सही दिशा में व्यवस्थित रहते हैं तो गृहस्थी की गाड़ी सही दिशा में गतिशील रहती है तथा घर में प्रसन्नता, शान्ति एवं समृद्धि का साम्राज्य भी रहता है। पति-पत्नी एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझकर, उसमें सहभागी बनकर जीवनयापन करते हैं तो घर गृहस्थी का रथ आजीवन प्रेम-सौहार्द के साथ चल सकता है, इसलिए पति-पत्नी को परस्पर 'जीवन साथी' कहा गया है।

पत्नी लक्ष्मी स्वरूपा एवं शक्ति की प्रतीक होती है। वह अपने व्यवहार से घर को स्वर्ग या नरक बना सकती है। पत्नी को अर्द्धांगिनी कहा जाता है। उपासकदशांग सूत्र अध्ययन 7 में पत्नी को "**धम्मसहाइया, धम्मविइज्जिया, धम्माणुरागत्ता, समसहदुक्खसहाइया**"- धर्म में सहायता करने वाली, धर्मसंगिनी, धर्म में अनुरक्त तथा सुख-दुःख में साथ देने वाली बताया है। धर्मपरायण पत्नी अपने पति को अनैतिक कार्यों से दूर रख, धर्म की प्रेरणा देकर सद्मार्ग पर चलने में सहयोग करती है। सुख-दुःख के समय वह पति का साथ पूर्ण समर्पण भाव से निभाती है इसीलिए उसे 'धर्मपत्नी' कहा जाता है।

दूसरी ओर पति भी अपनी अर्द्धांगिनी और सहधर्मिणी की सेवा, त्याग, समर्पण और विश्वास जैसी अनमोल पूंजी का संरक्षण करते हुए, पत्नी को अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा मानकर पति-धर्म निभाएँ। पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक (पर्याय) बनकर अपने-अपने कर्त्तव्यों का ईमानदारी से निर्वहन करें तो घर का वातावरण स्वर्ग जैसा बनने में देर नहीं लगे।

पाश्चात्त्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव, अर्थ-प्रधान फैशनपरस्त युग में संस्कारहीनता के कारण आज पति-पत्नी के संबंधों में सामंजस्य एवं सौहार्द नहीं है। एकाकी परिवारों की भी यह स्थिति है कि पति-पत्नी में आपस में नहीं बनती, आये दिन कलह और आपसी खींचतान बनी रहती है। जिसकी परिणति आपसी टकराव एवं उसका प्रतिफल तलाक के रूप में देख रहे हैं। फलस्वरूप घर का वातावरण स्वर्ग के स्थान पर नरक जैसा बन जाता है और पति-पत्नी का पवित्र रिश्ता टूटने के कगार पर पहुँच जाता है। रिश्तों के टूटने के प्रमुख कारण और रिश्तों को बचाने के उपाय इस प्रकार हैं-

1. **संदेह की आँधी–** पति-पत्नी के अधिकांश झगड़े तो संदेह के कारण उत्पन्न होते हैं। संदेह परस्पर में वैर का सर्जन करते हैं। जैसे एक पक्षी का श्रम से बनाया हुआ सुन्दर नीड़ आँधी के एक झोंके से बिखर जाता है उसी प्रकार संदेह और असहिष्णुता की आँधी आपसी रिश्ते को छिन्न-भिन्न कर देती है। विश्वास की ठोस धरती पर जीने वाला व्यक्ति संदेह की छिपकली को अपने पास ही नहीं फटकने देता। किन्तु इतना आत्म-विश्वास हर व्यक्ति में नहीं होता। छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने वाला व्यक्ति बहुत जल्दी संदिग्ध हो जाता है। जहाँ न तो सौहार्दपूर्ण वातावरण में बातचीत हो, न सहिष्णुता हो, वहाँ दोनों के मन में नफरत की बारुद एकत्रित होती जाती है, जो कभी भी भयंकर विस्फोट कर सकती है।

   जीवन में जो महत्त्व श्वास का है, घर-परिवार-समाज में वही महत्त्व विश्वास का है। विश्वास जीवन की श्वास है, जीवन की आस है, जीवन की प्यास है। विश्वास ही प्रसन्न दाम्पत्य जीवन का पाया (नींव) है। पति-पत्नी दोनों को एक दूसरे पर अटूट विश्वास होना चाहिये। अविश्वास और शंका से मजबूत संबंध भी खोखले हो जाते हैं। विश्वास टूटने के कई कारण हो सकते हैं, जैसे- एक दूसरे की बात नहीं मानना, आत्म-विश्वास को ठेस पहुँचाना, परस्पर विरोधी कार्य करना, कथनी व करनी में एकरूपता न रखना, एक दूसरे से अपनी बातें छिपाना, गुस्सैल स्वभाव का होना, एक दूसरे की उपेक्षा करना, गलतफहमियाँ होना, एक दूसरे के दोषों को प्रकट करना आदि।

   इन कारणों का निराकरण करने के लिए एक दूसरे की भावनाओं का आदर करें, गलतफहमी को तुरन्त दूर करें, गलती स्वीकार करें, तनाव मुक्त जीवन जीएं, एक दूसरे के साथ लचीला व्यवहार रखकर अपने अहं का त्याग करें, एक दूसरे की कमियाँ/गलतियाँ न देखकर गुण देखें, मनमुटाव हो जाने पर तुरन्त समझौता करें, विचारों के साथ समन्वय रखें। एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। परिस्थिति से समझौता कर वर्तमान में जीने का प्रयास करें तो जीवन में कभी अविश्वास की स्थिति ही उत्पन्न नहीं होगी।

2. **असहिष्णु मनोवृत्ति–** व्यक्ति और कुछ जाने या नहीं, सहन करना सीख ले तो एक परिवार में शांति से रह सकते हैं। सहन करने की मनोवृत्ति न हो तो पति-पत्नी कभी भी साथ नहीं रह पाते। सहना, मजबूरी नहीं पति-पत्नी के साथ रहने की साधना है। आए दिन बढ़ते जा रहे तलाक असहिष्णु मनोवृत्ति की देन हैं। कवि के शब्दों में-

   सहनशीलता की हो गई कमी इस तरह,
   घर टूट रहे हैं काँच के छल्ले की तरह।

विवाह विच्छेद हो रहे हैं मस्ती की तरह,
जीवन रिश्ते हो रहे हैं खेल की तरह।।

सहिष्णुता एक ऐसा दुर्लभ गुण है जो मनुष्य के मन को मजबूत बना देता है। स्वस्थ परिवार की संरचना के लिए एक दूसरे के विचारों, व्यवहारों और तरीकों को सहन करना बहुत जरूरी है। बात-बात में तर्क करने वाले पति-पत्नी एक दूसरे के हृदयों पर राज नहीं कर सकते। पति और पत्नी दोनों एक दूसरे को सहन करने की आदत डालें, तभी जीवन में समरसता आ सकती है।

जहाँ क्रोध है, असहिष्णुता है वहाँ व्यक्ति की शांति नष्ट हो जाती है। जिस परिवार में कलह होता है, आपस में असहिष्णुता होती है, वहाँ अशांति का वातावरण बन जाता है। क्रोध करने के क्षणों में समता का आंचल थाम लेना ही जीवन का मंगल है। एक आग हो तो दूसरा शीतल जल हो, एक अंगारा हो तो दूसरा बर्फ हो तो जीवन गाड़ी पथ के व्यवधानों से बच सकती है। पति हो या पत्नी, सहिष्णु व्यक्ति ही शांत वातावरण का निर्माण कर सकता है।

3. **संवाद का अभाव**– बुद्धि से बुद्धि टकराती है तो विवाद होता है और हृदय से हृदय मिलता है तो संवाद होता है। संवाद की एक विशेषता है कि दोनों में से कोई नहीं हारता, दोनों ही जीत जाते हैं तथा विवाद की भी एक विशेषता है दोनों में से कोई नहीं जीतता, दोनों ही हार जाते हैं। पति-पत्नी में अधिकतर विवाद, संवाद के अभाव के कारण होते हैं। जहाँ संवाद होता है वहाँ बड़े से बड़ा विवाद समाप्त हो जाता है। जहाँ संवाद नहीं होता वहाँ नये-नये विवाद खड़े हो जाते हैं। घर में बढ़ते विवाद, पति-पत्नी के पवित्र रिश्ते को तोड़ने में अहं भूमिका निभाते हैं।

छोटी-छोटी बातों को लेकर अधिकांश पति-पत्नी घंटों, दिनों क्या महीनों तक बोल-चाल बंद कर देते हैं। जिससे दूरियाँ बढ़ती हैं, फिर एक दूसरे की गलतियाँ ही दिखती हैं। आपसी अनबन के बीच ईगो की दीवार खड़ी हो जाती है कि पहले पहल कौन करे? ऐसे में पति-पत्नी का जीवन नीरस, अशांत और दुःखी बनता है। अतः पति-पत्नी दोनों यह संकल्प लें कि लड़ाई चाहे किसी भी बात पर हुई हो, गलती चाहे किसी की भी हो, सॉरी मांगे बिना भोजन नहीं करेंगे या सोएंगे नहीं, बोल-चाल कभी बंद नहीं करेंगे, वाद-विवाद करके, व्यर्थ चर्चा करके बात नहीं बढ़ाएंगे और कटु शब्दों का प्रयोग कर जीवन में कड़वाहट नहीं लायेंगे।

4. **परस्पर समझौते की भावना**– एकल परिवार में भी यदि शांति से जीना है तो हमारे मानस में न्याय की भाषा और तर्क के सिद्धान्त नहीं, बल्कि समझौते की सरगम

चाहिए। जिन्दगी समझौते से चलती है। जहाँ परस्पर समझौता हो, एक-दूसरे का सम्मान हो, उस परिवार में टूटन नहीं होती और वही परिवार उन्नति के शिखर पर चढ़ता है।

पति द्वारा पत्नी के कार्य की प्रशंसा उसे पुनः कार्य करने का उत्साह देती है तथा पति द्वारा समय की पाबंदी उसके विश्वास को बढ़ाती है। पत्नी द्वारा पति को दी गई प्रेरणा उसके जीवन में हिम्मत बढ़ाती है तथा परोक्ष में की गई प्रशंसा पति के दिल में पत्नी का अमिट स्थान बनाती है, अतः पति-पत्नी को चाहिये कि वे प्रशंसा एवं प्रोत्साहन के शब्दों में कंजूस न बनकर उदार बनें एवं सामने वाले को कार्य करने हेतु उत्साहित करें। दोनों एक दूसरे को नैतिकता व धार्मिकता के लिए प्रेरित करते रहें। जीवन में धर्म होने से संबंधों में मधुरता का निवास होता है।

5. **रिश्ता मजबूत बनाएँ-** रिश्ता कोई भी हो, उसे निरन्तर बुनना पड़ता है और बहुत कुछ सहना पड़ता है, वरना बेबुनियाद बातों के कारण ये संबंध कच्चे धागों की तरह टूट जाते हैं। कहते हैं रिश्तों का धागा बहुत पतला होता है। लेकिन अच्छे ढंग से रिश्ता निभाने पर यह धागा जीवन भर के लिए मजबूत व अटूट हो सकता है। परस्पर एक दूसरे के प्रति मन में सद्भाव व सम्मान रखना चाहिए। पति का दायित्व होता है कि वह पत्नी की बात ध्यान से सुने, उपेक्षा से नहीं। पति-पत्नी का रिश्ता काँच की चूड़ी के समान अति नाजुक है। अतः इस रिश्ते को दिमाग से नहीं दिल से जीना होता है। इसके लिए आवश्यक है सकारात्मक दृष्टिकोण, सर्जनात्मक मानसिकता और सुमधुर वचन प्रयोग।

6. **जागरूकता का अभाव-** एक सुखी परिवार का ताना-बाना बुनने में परिवार के प्रत्येक सदस्य की जागरूकता अपेक्षित रहती है। पति अथवा पत्नी का थोड़ा-सा प्रमाद उस ताने-बाने को इतना उलझा देता है कि परिवार में बिखराव की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। बहुत बार जीवन में छोटी-छोटी बातों में संघर्ष हो जाता है, परन्तु एक दूसरे की बात समझ कर परस्पर सम्मान बनाए रखने से जीवन मधुर बनता है।

पति और पत्नी दोनों को पारस्परिक विश्वास को सुरक्षित रखने के लिए निरन्तर जागरूक रहने की आवश्यकता है। विश्वास पर आघात करने वाले घटना-प्रसंगों में रूबरू बातचीत की परम्परा स्थापित की जाए तो समस्या का समाधान बहुत अच्छे ढंग से हो सकता है।

7. **हीनभावना और अहंभावना-** अहं की भाषा जोड़ती नहीं तोड़ती है। मिथ्याभिमान पति-पत्नी के बीच दूरियाँ पैदा करता है। पुरुष को अहंभाव अधिक

सताता है तो महिलाओं को हीन भाव ज्यादा सताता है। हीनता और अहं की ग्रंथियों से बचे रहने पर ही संतुलित जीवन जीया जा सकता है, अन्यथा पति-पत्नी के झगड़े चलते रहेंगे और परिवार टूटने की समस्या उत्पन्न हो जायेगी।

यदि जीवन में सुख पाना है तो अपने जीवन साथी की तुलना किसी अन्य से कभी नहीं करना, क्योंकि प्रत्येक पुरुष के अंदर स्वयं का शक्तिशाली, सामर्थ्यवान व काबिल होने का अहं होता है तथा हर पुरुष अपनी पत्नी व परिवार के लिए श्रम करता ही है। अतः यदि पत्नी अपने पति की तुलना किसी अन्य से करती है, उनको ताने मारती है या पति अपनी पत्नी की तुलना किसी अन्य की पत्नी से करके उसे नीचा दिखाने की कोशिश करता है तो जीवन में कड़वाहट आये बिना नहीं रहेगी। अतः परस्पर एक-दूसरे को योग्य मान कर एक दूसरे के कार्य में सहयोगी बनें, परस्पर संतुष्ट रहें। एक-दूसरे को अपमानित करने वाले शब्द कभी नहीं बोलें। एक-दूसरे के स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुँचाएँ।

8. **अपनी बात मनाने की जिद्द-** पति को अपना अधिकार जमाना है और पत्नी को अपनी ही बातें सच्ची सिद्ध करनी हैं तो कैसे चले घर? और कैसे मिलेगी शांति? अपनी ही बात मनवाने की जिद्द पति-पत्नी के रिश्तों को तो जर्जर कर ही देती है, साथ ही टकराव के अनेक और नए मुद्दे भी पैदा कर देती है।

सामने वाले के दृष्टि-बिन्दु व आशय को पूर्ण रूप से नहीं समझ पाने और अपनी दृष्टि और अपने मत के आग्रह को नहीं छोड़ पाने के कारण ही पति-पत्नी में मतभेद होते हैं। मत भेद से मन भेद और मन भेद से आगे चलकर तन भेद खड़े हो जाते हैं। 'मेरी बात सही है और आपकी गलत' इस आग्रह बुद्धि के कारण आपस में टकराहट होती है। **जीवन को सुखमय बनाना है तो टकराहट को टालना होगा।**

भारतीय सभ्यता और संस्कृति की पहचान ही सामंजस्य और सहयोगपूर्ण भावना है। हमें आवश्यकता है दोस्ताना भाव की, अहंपूर्ण नहीं, सूझबूझ से ओतप्रोत विचारों की। कभी भी दो व्यक्तियों के विचार एक सरीखे नहीं होते। स्वभाव भी पृथक्-पृथक् होने से छोटी-बड़ी बात में मतभेद होना सहज है। जैसे पति को जो कार्य पसंद है वह पत्नी को नहीं और जो पत्नी को पसंद है वह पति को नहीं। अतः अपनी-अपनी बात मनवाने की जिद्द छोड़कर दोनों को मिलजुल कर मध्यस्थ मार्ग निकाल लेना चाहिए ताकि मतभेद नहीं हो। **मन में भेद नहीं तो जीवन बनेगा अभेद।**

9. **स्वार्थ की भावना-** ऐसा स्वार्थ नहीं होना चाहिए जो दूसरे के स्वार्थ में बाधा पहुँचाए, कठिनाई पैदा करे। कोरा स्वार्थ किसी काम का नहीं होता। केवल अपना

ही स्वार्थ नहीं, दूसरे का भी हित सधना चाहिए। जहाँ इस तरह का व्यवहार होता है, अनेक समस्याएँ सुलझ जाती हैं।

पति-पत्नी के बीच निःस्वार्थ भाव व सरलता होनी चाहिये। एक-दूसरे का जीवन परस्पर दर्पण की तरह पारदर्शी, सरल व स्पष्ट होना चाहिये। ऐसा होने पर ही जीवन रूपी गाड़ी निर्बाध रूप से चलती है। पति-पत्नी में कलह इसीलिए होता है कि अपने-अपने कार्य या सम्बन्धी को प्राथमिकता देना शुरु कर देते हैं। जहाँ सामुदायिक जीवन है वहाँ स्वार्थ का सीमाकरण जरूरी है। स्वार्थ एक सीमा से आगे नहीं बढ़े तो कोई समस्या पैदा नहीं होगी।

10. **संकुचित दृष्टिकोण-** हमारा दृष्टिकोण उदार-विशाल होना चाहिये। संकीर्ण दृष्टि से देखने वाला अपने आस-पास तक ही देख पाता है। जबकि व्यक्ति को दूर तक की आगे-पीछे की बात जरूर देखनी चाहिए। केवल आगे-पीछे की ही नहीं, अपितु चारों तरफ की सोच रखनी चाहिये।

पत्नी, पति को स्वयं से अलग न माने, न ही पति, पत्नी को स्वयं से अलग माने, निश्चय में तो दोनों अलग ही हैं, परन्तु व्यवहार पक्ष में दोनों ही अपनी वृत्तियों में उदारता रखें।

कई घरों में पत्नी अपने मायके से आए पैसों का बैंक बेलेंस अलग चलाती है और पति को बताती भी नहीं है। इस तरह संकुचित मनोवृत्ति से घर का प्रेम नहीं टिक सकता। पीहर से मेहमान आए तो पत्नी दौड़-दौड़कर सारा कार्य करती है और ससुराल के मेहमानों को देख मुँह चढ़ाती है। यह वृत्ति पति-पत्नी में अनबन कराती है। मेहमान कहीं के भी हों, उन्हें देखकर खुश होना चाहिये। क्योंकि- **''अतिथि देवो भव।''** भारतीय परम्परा का जीवन-सूत्र है।

पारिवारिक संघर्ष का कारण ही संकुचित दृष्टिकोण है। दृष्टिकोण व्यापक और उदार होगा तो व्यापक हितों की ओर ध्यान जाएगा, इससे विपरीत अगर बहुत सीमित दृष्टि से सोचा गया तो अनेक समस्याओं में व्यक्ति उलझ जाएगा।

11. **व्यक्तिगत हितों को प्रधानता देना-** परिवार में रहते हुए कभी-कभी इच्छाओं का बलिदान भी करना चाहिये, अन्यथा इच्छाओं का टकराव आत्मीयता में ज़हर घोल देता है।

समस्याएँ इसलिए खड़ी होती हैं कि आज की भागमभाग पूर्ण जिन्दगी में व्यक्ति को समय नहीं है। पति अपनी पत्नी के लिए समय नहीं निकाल पाता है। पर

वास्तविकता यह है कि हमारे पास दोस्तों के लिए समय है, खाने के लिए समय है, गप्पे मारने के लिए समय है, टी.वी. देखने के लिए समय है, व्यापार, व्यवसाय अथवा नौकरी के लिए समय है, परन्तु दुःख और पीड़ा की बात यह है कि अपनी पत्नी एवं बच्चों के लिए हमारे पास समय नहीं है। यदि अपने जीवन में पारस्परिक आनंद और उमंग का अनुभव करना चाहते हैं तो पत्नी एवं बच्चों के लिए समय निकालें। परस्पर संवाद करें और आपसी समस्याओं का अपने व्यक्तिगत हित में नहीं, अपितु परिवारहित में समाधान करें।

12. **सहयोग और समर्पण की कमी–** जिस प्रकार शरीर में एक टिश्यू या सेल शक्ति नहीं ला पाता है अनेक सेल्स मिलते हैं तब कहीं कोशिकाओं का संगठन बनता है और शक्ति आती है, उसी प्रकार पति-पत्नी आपस में मिलजुल कर रहते हैं तो शक्ति बनती है। इसलिए कहा जाता है- **पति-पत्नी में हो जहाँ एका, हमने गुलजार वो ही घर देखा।**

पति-पत्नी का सहज कर्त्तव्य हो जाता है कि वे एक दूसरे के साथ सहयोग करें, परस्पर अनुकूल होकर चलें, एक दूसरे के प्रति प्रामाणिक होकर रहें, एक-दूसरे पर आत्मीयता और समर्पण भाव हो। पति का कर्त्तव्य है वह पत्नी को धर्म की ओर आगे बढ़ावे और पत्नी का दायित्व है कि वह पति को धर्म की ओर प्रेरित करे।

13. **संस्कारों की भूमिका–** व्यक्ति के उच्च जीवन निर्माण में संस्कारों की अहम् भूमिका होती है। अगर पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति सम्मान सद्भाव की भावना रखते हैं तो कभी भी परिवार टूटने की समस्या नहीं आती है। इसके लिए माता-पिता द्वारा प्रदत्त सुसंस्कार और हितशिक्षाएँ बहुत उपयोगी होती हैं। अतः

पाश्चात्य लहर से छुटकारा पाना होगा,
टूटते रिश्तों को जोड़ना होगा।
सदाचार के रंग में रंगना होगा,
सुसंस्कारों में रमना होगा।।

आज की आधुनिक पीढ़ी शिक्षित जरूर है, परन्तु संस्कारी और समझदार नहीं। बिना समझदारी के शिक्षा न सुख दे सकती है और न ही शांति। आपसी माहौल बिगड़ने व वातावरण दूषित होने के लिए पति-पत्नी दोनों ही जिम्मेदार होते हैं, अतः सकारात्मक सोच रखना जरूरी है। सकारात्मक सोच और सामंजस्य के बिना यह नाजुक रिश्ता सफल नहीं हो सकता।

14. **प्रेम, आदर और समायोजन की भावना–** पति-पत्नी का संबंध, स्नेह, समर्पण

और त्याग का संबंध है। प्रेम और विश्वास की नींव पर टिका यह संबंध परस्पर सहयोग से आजीवन दृढ़ रहता है। अतः यदि पत्नी, पति की भूल को तूल नहीं देती है तो पति को भी चाहिये कि वह पत्नी की भूल को तूल देकर कलह नहीं बढ़ाए। दोनों अपने-अपने कार्य क्षेत्र को संभालें, एक-दूसरे में हस्तक्षेप न करें। दोनों एक दूसरे के अनुकूल हों तो ही उनमें सच्चा प्रेम है, क्योंकि मात्र आकर्षण कभी भी समायोजन को तैयार नहीं होता, जबकि प्रेम सदियों से समायोजित करता रहा है। पति-पत्नी दोनों में से एक अधिक बोलता है तो दूसरा कम बोले। एक कृपण है तो दूसरा उदार रहे। एक को हंसी उडाने की आदत है तो दूसरा हंसी में ही बात को ले ले। कुछ कमियाँ पति में होती हैं तो कुछ कमियाँ पत्नी में भी होती हैं, अतः दोनों एक-दूसरे को समझ कर चलें तो जीवन रथ आराम से चल सकता है। कहा भी है-

परम्पराएँ और पीढ़ियाँ अपनापन पा हंसती हैं।
प्रेम, समन्वय खानदान में छलका देती मस्ती हैं।।

वर्तमान में आपसी सामंजस्य व प्रेम के अभाव में पति-पत्नी में बिखराव की स्थिति पैदा होती जा रही है, जो सोचनीय विषय है। प्रेम में जब अधिकार प्रवेश पा जाता है तो प्रेम का खून हो जाता है। प्रेम प्रतीक है त्याग, बलिदान और समर्पण का। घर को स्वर्ग समान बनाए रखने के लिए पति-पत्नी में आपसी प्रेम व्यवहार व आदर होना चाहिए तथा एक दूसरे के अच्छे विचारों को जानने का प्रयास होना चाहिए, ताकि आपस में सामन्जस्य बना रहे।

आज के भौतिक सुखों के वातावरण युक्त मकान भव्य इमारतों की तरह हैं, जिनमें सभी सुविधाएँ हैं, रहने के लिए प्रचुर स्थान हैं, सभी साधन सुव्यवस्थित हैं, पॉप म्यूजिक, टी.वी. चैनल एवं पालतू कुत्तों की भौं-भौं नजर आती है। परन्तु हंसी के ठहाके, खुशी का वातावरण व आत्मिक शांति नजर नहीं आती। शांति के धाम के समान घर आजकल अशांति के चक्रव्यूह-स्थल बनते जा रहे हैं। पति को परमेश्वर मानने वाली पत्नी भी पति को बहिष्कृत कर तलाक की राह पर चल पड़ती है। पति भी पत्नी की परवाह न कर सम्बन्ध-विच्छेद तक पहुँच जाते हैं। क्यों? क्योंकि प्रेम और समन्वय नहीं रहा। टूटते रिश्ते को आपसी प्रेम, समन्वय, तालमेल और सहनशीलता से ही बचाया जा सकता है। कवि के शब्दों में-

परिवार व समाज में सहनशील बनो, जीवन के संग्राम में कर्मशील बनो।
सत्य और प्रेम की महक हो जीवन में, मृदुभाषी, शालीन और विवेकशील बनो।।

-7/14, उत्तरी नेहरू नगर, बिद्रुल बस्ती, ब्यावर-305901 (राज.)

युवा-स्तम्भ

वचनों को संभालो (2)

प्रो. पारसमल संकलेचा

परिवार में, संघ में, समाज में अर्थात् जीवन में वचनों का बड़ा महत्त्व है। वचन औषधि का काम करते हैं और गलत इस्तेमाल से गहरा जख्म देते हैं। बनी-बनाई बिगाड़ने का और बिगड़ी हुई बनाने का कार्य भी वचन ही करते हैं। वचनों के कारण मित्र दूर हो जाते हैं और शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। सुप्रभाव और कुप्रभाव वचनों का खेल है। कटुभाषी व्यक्ति हमेशा अपने मित्रों की संख्या घटाता चला जाता है और शत्रु बढ़ाता चलता है। कठोर वचनों के कारण मन में मैल भर जाता है और अच्छे सम्बन्धों में दरार आ जाती है, प्रेमभाव नष्ट हो जाता है। प्रेम का नाजुक धागा कटु वचनों से टूट न जाए इसका हमें ध्यान रखना है। रहीमजी ने कहा है-

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाय।।

इसलिए प्रेम-सम्बन्धों को सम्भालना है तो वचनों को सम्भालना जरूरी है। क्रोध, ईर्ष्या, जलन, द्वेष, तिरस्कार, अहंभाव आदि कारणों से व्यक्ति कटु वचनों का प्रयोग करता है। कठोर-झूठे वचनों के कारण मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है।

श्रमणोपासक के वचन व्यवहार में भी हमें यही बात समझाई गई है। श्रावक का वचन-व्यवहार कैसा होना चाहिये, इसके आठ बोल बताये गये हैं। पहले बोल में कहा गया है, 'श्रावक जी थोड़ा बोले।' अर्थात् ज्यादा बोलने वाले की, बकबक करने वाले की संघ-समाज-परिवार में कोई कीमत नहीं होती। अधिक बोलने से व्यक्ति की कीमत घट जाती है। दूसरे बोल में कहा गया है- 'श्रावक जी आवश्यकता होने पर बोले।' जो असमय बोलता है, आवश्यकता न होने पर भी बोलता है, वह स्वयं ही अपने अपमान का कारण बन जाता है। कहते हैं भारत में सौ करोड़ डॉक्टर हैं। अर्थात् सभी अनावश्यक सलाह देने में तत्पर रहते हैं। मुफ्त में सलाह दी जाती है। हमें चाहिए कि किसी के पूछने पर ही, आवश्यकता होने पर सलाह दें। परिवार में रहते हुए भी परिजनों को बार-बार टोकने से अपमान सहना पड़ता है। बच्चों को बार-बार सलाह देने से, टोकने से, बच्चे सहज ही कह देते हैं, "थाने कै समझ, थे चुप बैठो, म्हाने म्हाका तरीका सू चलन देवो।" परिवार के सदस्य भी सहजता से कह देते हैं- "व्याने तो भूकन री आदत पड़ गयी है।" फिर आता

है- 'श्रावक जी मीठा बोले।'

मीठो मीठो बोल थांरो कांई बिगड़े?
कांई बिगड़े थारो, कांई बिगड़े?

जहाँ तक हो सके, हमें कटु वचनों का प्रयोग तो करना ही नहीं चाहिए। प्रयोग मीठे वचनों का ही होना चाहिए। पर आज मनुष्य प्रेम की बोली भूल गया है। राम-कृष्ण-महावीर की माला तो हम फेरते हैं, पर सही अर्थ में उन्हें याद नहीं करते। उनके आदर्शों को हम भूल चुके हैं। कुमुद मुनि के शब्दों में-

कौन सुनेगा आज यहाँ पर पीर को,
भूल चुका है आज मनुज, श्री राम-कृष्ण-महावीर को।।
कभी वीर चंदना से, उड़द बाकुले पाते थे,
चण्डकौशिया के विष के बदले, अमृत रस बरसाते थे।
आज मनुज बरसाता है, कटु वाणी के विष तीर को।।
राम-कृष्ण-महावीर की माला, जपने वालों सुन लेना।
उनके उत्तम जीवन से कुछ शिक्षाएँ भी चुन लेना।
'कुमुद' मुनि कहे जीवन बदलो, पीओ प्रेम के नीर को।।

कटु वचनों को त्यागकर सबके साथ हमारा व्यवहार स्नेहभरा हो। एक बार स्कूल में मास्टरजी ने बच्चों से एक सवाल पूछ लिया, "बताओ! रामू के चार बैल और श्यामू के पाँच बैल, कुल मिलाकर कितने बैल हुए?" एक छात्र बीच में खड़ा होकर बोल उठा- "मास्टर जी! श्यामू के पास तो केवल तीन बैल हैं, दो बैल उसने पिछले साल बेच दिये।" मास्टर जी गुस्सा होकर बोले-"नालायक! समझ ले ना, तेरे बाप का क्या जाता है? बता, चार बैल और पाँच बैल मिलाकर कितने हुए?" बच्चे ने जवाब दिया-"पच्चीस!" मास्टर जी फिर गुस्सा होकर बोले-"नालायक! पच्चीस होते हैं क्या?" बच्चे ने कह दिया, "मास्टर जी! समझ लो ना, आपके बाप का क्या जाता है?" कहने का तात्पर्य यह है कि जैसा दिया वैसा पाया। मास्टर जी बच्चे को प्यार से समझा सकते थे-"बेटा! मैं तो केवल उदाहरण बता रहा हूँ। हमारा मकसद तो केवल जोड़ लगाना है, बताओ चार और पाँच कितने होते हैं?" तो बच्चा भी सही जवाब दे देता- 'नौ'।

कभी-कभी अनुशासन के लिए गुरु अपने शिष्य को कटु वचनों से संबोधित करते हैं, वह बात और है। पर उसमें भी विवेक होना जरूरी है। वचनों का प्रयोग सम्भालकर होना जरूरी है। यथासंभव कटु वचनों का प्रयोग न हो। एक बार एक बच्चे ने महेश की शिकायत

करते हुए मास्टर जी से कहा- "मास्टर जी! महेश ने मुझे गाली दी।" मास्टर जी ने महेश से कहा- "हरामखोर! गाली देता है। गाली देना बुरी बात है।" अब आप ही बताओ मास्टर जी और महेश में क्या अंतर है? क्या मास्टर जी में विवेक है?

कटु वचनों में सत्य कहने से भी परिणाम विपरीत आते हैं। परिवार में भी कई बार मन के विपरीत बातें होती है, उस वक्त भी हमें शांति से पेश आना है। समझो, बहू से काँच का बर्तन फूट गया और सास ने बहू से कहा-"आँखें फूट गयी क्या? यह नुकसान कौन तेरा बाप भरेगा क्या?" परिवार में क्लेशमय वातावरण बन गया। तनाव पैदा हो गया, सास-बहू में अप्रीति-अनबन हो गयी। यदि सास कह देती- "बेटा! कोई बात नहीं, तुझे चोट तो नहीं आयी?" बहू स्वयं शरमींदगी महसूस करती और परिवार स्वर्ग बना रहता। कटु वचनों के ज़हर से बचें-

मीठे पानी में यह ज़हर ना तुम घोलो,
जब भी बोलो यह सोचकर तुम बोलो,
भर जाता है गहरा घाव, जो बन जाता है गोली से।
पर वह घाव नहीं भरता जो, बना हो कड़वी बोली से।।

-शिरपुर (महा.)

Nice Words

Ms. Minakshi Jain (Advocate)

1. **Two Simple tips to stay happy-** (i)Never think and speak about the second person. (ii) Never think what the second person thinks and speak about you.
2. **Small thought, big meaning-** Life is weakest when there are more doubts than trusts. But life is strongest when you learn how to trust inspite of the doubts.
3. Worries and tensions are like birds, we can't stop them from flying near us, but we can certainly stop them from making nest on our heads.
4. If you never tasted a bad apple, you would never appreciate a good apple. Hence you have to experience life to understand life.

-Surana Ki badi Pole, Nagaur-341001 (Raj.)

मांस-निर्यात पर प्रतिबंध क्यों आवश्यक?

डॉ. एन.के. खींचा (सेवानिवृत्त आर.ए.एस.)

भारतीय संविधान के भाग चार में निरूपित नीति निर्देशक तत्त्वों के अनुच्छेद 48 में राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह कृषि एवं पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों पर संघटित करने का प्रयास करे तथा विशेषतः गायों व बछड़ों तथा अन्य दुधारू एवं भार ढोने वाले पशुओं की नस्ल के परीक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाए। इसके अनुसार सरकार को पशुवध पर सख्ती से नियंत्रण करना चाहिए व उनकी नस्ल सुधार के लिए योजनाबद्ध कार्य करना चाहिए। इसके विपरीत केन्द्र सरकार द्वारा सम्प्रति मांस निर्यात नीति को बढ़ावा देकर पशुवध में वृद्धि करके संविधान के नीति निर्देशों की अवहेलना की जा रही है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय एवं कृषि तथा प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2010-11 में 4.8 मिलियन टन व वर्ष 2011-12 में 5.5 मिलियन टन मांस का निर्यात किया गया है, जिसमें वर्ष 2011-12 में 98,54,91,274 किलोग्राम भैंस के मांस का निर्यात किया गया है जो कि वर्ष 2012-13 में बढ़कर 1,10,69,65,200 किलोग्राम हो गया।

मांस निर्यातकों को एक भैंस से औसतन 110 किलोग्राम मांस की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हम देखें तो वर्ष 2011-12 में 89.59 लाख व 2012-13 में 100.63 लाख अर्थात् एक करोड़ से अधिक भैंसों का कत्ल सिर्फ मांस निर्यात के लिये किया गया है।

हमारे देश में मांस-निर्यात के परिणाम स्वरूप दूध का उत्पादन कैमिकलों से किया जा रहा है। इसके कारण कैंसर जैसी भयंकर बीमारियां पैदा हो रही हैं और विभिन्न प्रकार की बीमारियों से लोग परेशान हैं। इससे उनके जीवन का अंत हो रहा है तथा संविधान के अनुच्छेद 47 का उल्लंघन हो रहा है। यदि हमारे देश से मांस निर्यात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाए तो शुद्ध दूध की मात्रा उपलब्ध रहेगी व सिंथेटिक केमिकल व मिलावटी दूध का अभाव हो जाएगा, इसलिए मांस-निर्यात पर पाबंदी लगाया जाना न्यायोचित्त व न्यायसंगत है।

अन्तरराष्ट्रीय पर्यावरण समिति की रिपोर्ट के अनुसार एक किलो मांस के उत्पादन में करीब 25 लीटर पानी का अपव्यय होता है, जिससे 5.5 मिलियन टन मांस उत्पादन में पानी का भारी अपव्यय हो रहा है। इससे हमारे देश में जल-संकट की स्थिति पैदा हो रही है, तथा भूजल स्तर दिन प्रतिदिन नीचे जा रहा है जो कि शुभ संकेत नहीं है तथा इसका एक कारण

मांस उत्पादन में वृद्धि है जिससे देश के पर्यावरण को भयंकर खतरा उत्पन्न हो रहा है।

एक अमेरिकी रिपोर्ट के अनुसार हमारा देश ही मांस निर्यात को सबसे ज्यादा बढ़ावा दे रहा है, जबकि अन्य देशों ने मांस निर्यात को या तो बंद कर दिया है अथवा मांस निर्यात सीमित कर दिया है। जिस पर भी आमजन को विचार करना चाहिए कि आखिर विदेश में मांस निर्यात को क्यों प्रतिबंधित या सीमित किया गया है?

जैन धर्म का मूल सिद्धान्त अहिंसा – जीओ और जीने दो है। यह सिद्धान्त सभी धर्मों को मान्य है। संविधान में सभी धर्मों एवं उनके अनुयायियों की भावनाओं की कद्र करने की बात कही गई है। अतः मांस निर्यात से जैन की ही नहीं, सभी धर्मावलम्बियों की भावनाओं को ठेस पहुँचती है, जिसके कारण संविधान की मूल भावना का उल्लंघन हो रहा है।

इस सम्बन्ध में जैनाचार्य श्री विजयरत्नसुन्दर सूरीश्वर जी महाराज द्वारा श्री एस. एस. आहलूवालिया, पूर्व सांसद के माध्यम से मांस-निर्यात नीति के पुनरवलोकन हेतु याचिका प्रस्तुत की गई है, जिसकी सुनवाई राज्यसभा द्वारा गठित समिति के सभी माननीय सदस्यगण द्वारा की जानी है। राज्यसभा सचिवालय की ओर से 28 जून, 2013 को दैनिक समाचार पत्रों में विज्ञापन के माध्यम से आमजन से सुझाव व आपत्तियां आमंत्रित की गई थी, जिससे अब यह प्रश्न आमजन के लिए बहस का विषय हो गया है कि क्या वर्तमान मांस निर्यात नीति को जारी रखा जाए अथवा मांस-निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया जाए? मांस निर्यात प्रतिबंध हेतु अहिंसावादी साधकगणों एवं गृहस्थों का दायित्व है कि भारत सरकार को ज्ञापन प्रेषित करें। **अपने विचार हिन्दी या अंग्रेजी भाषा में ईमेल या पत्र द्वारा निम्नांकित पते पर प्रेषित करें–** श्री आर.पी. तिवारी, डिप्टी डायरेक्टर, राज्य सभा सचिवालय, पार्लियामेण्ट हाउस एनेक्सी, नई दिल्ली-110001,Email-rsc2pet@sansad.nic.in, Telefax-011-23794328, Telephone No.-011-23035577

-544-ए, सिद्धार्थ नगर, जवाहर सर्किल के पीछे, जयपुर-302017 (राज.)

आवश्यक सूचना

सभी धर्मानुरागी बन्धुओं को सूचित करते हुए अत्यन्त प्रमोद हो रहा है कि सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा प्रकाशित ''जैन धर्म का मौलिक इतिहास'' के चारों भागों का संक्षिप्त रूप गुजराती भाषा में मुद्रित हो चुका है। गुजराती में जैन धर्म का मौलिक इतिहास हेतु इच्छुक चारों पुस्तकें मय डाक खर्च सहित रुपये 350/- का मनीऑर्डर या एटपार का चैक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के नाम से भेजकर सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राजस्थान) से प्राप्त कर सकते हैं। अहमदाबाद में ये पुस्तकें श्रीमान् पदमचन्द जे. कोठारी, जनरल फाइनेन्स कोरपोरेशन, 37, न्यू क्लोथ मार्केट, अहमदाबाद-380002 (गुजरात) फोन नं. 079-22160675, 9429303088 से प्राप्त की जा सकती हैं।

स्वास्थ्य-विज्ञान

स्वास्थ्य का अमूल्य स्रोत : मानव-मूत्र

डॉ. चंचलमल चोरडिया

गोमूत्र के औषधीय महत्त्व से हम परिचित हैं। मानवमूत्र भी इसी प्रकार मानव के रोगों की अमूल्य औषधि है। डॉ. चंचलमल जी चोरडिया ने प्रस्तुत आलेख में मानवमूत्र अर्थात् शिवाम्बु के प्रयोग एवं उसके अपरिभित लाभों से परिचित कराया है।-सम्पादक

मानव शरीर अपने आप में परिपूर्ण होता है। इसमें अपने आपको स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। प्रकृति बालक के जन्म के साथ ही पालन-पोषण के लिए माता के स्तन में दूध प्रदान करती है। ठीक इसी प्रकार जीवन भर स्वास्थ्य रक्षा एवं रोग निवारण के लिए शरीर मूत्र उपलब्ध कराता है। प्रकृति का सनातन सिद्धान्त है कि जहाँ समस्या होती है उसका समाधान उसी स्थान के समीप अवश्य होता है। अत: जो रोग शरीर में पैदा होता है, उसका उपचार उसी शरीर में अवश्य होना चाहिए। दूसरी बात दुनिया में जब दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते, तब दो रोगियों का उपचार एवं निदान एक जैसा कैसे हो सकता है? प्रत्येक व्यक्ति में रोग का परिवार अलग-अलग होता है। अत: उसके उपचार हेतु ली जाने वाली दवा भी अलग-अलग होनी चाहिए। किन्तु यह कारखानों में बनी दवाओं से संभव नहीं। तीसरी बात, अच्छी चिकित्सा पद्धति सहज, सरल, सस्ती, स्वावलंबी, सर्वत्र सभी समय उपलब्ध, अहिंसक, प्रभावशाली एवं स्थायी उपचार वाली होती है, जिसमें किसी भी प्रकार के दुष्प्रभावों की संभावना नहीं होती। यह पद्धति रोग में न केवल राहत ही देती है, अपितु विधिपूर्वक की जाए तो चन्द दिनों में ही स्थायी समाधान करने में सक्षम होती है। अतः इसको बालक, वृद्ध, महिला, पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित तथा शरीर विज्ञान की विशेष जानकारी न रखने वाला व्यक्ति भी सभी रोगों के उपचार हेतु आत्म-विश्वास के साथ अपना सकता है। इसका आधार होता है प्रकृति के सनातन सिद्धान्त एवं अनुभूतिपरक अंतिम सुखद परिणाम। स्व मूत्र उपर्युक्त सभी तथ्यों पर शतप्रतिशत खरा उतरता है। मानव मूत्र गंदा, खराब, विषैला, हानिकारक विजातीय तत्त्व नहीं है, जैसा कि चंद स्वार्थी एवं अधूरे ज्ञान वाले व्यक्तियों के भ्रामक कथनों द्वारा बार-बार प्रचारित किया जाता है।

केवल भौतिक सत्यापन एवं तर्क अनुभूति के ज्ञान का पूर्ण मापदण्ड नहीं हो सकता

डामर तंत्र में शिवजी ने पार्वती जी को स्वमूत्र के लाभ एवं उपयोग के बारे में विस्तार से

समझाया, जो अनुभूतिपरक सनातन सत्यों पर आधारित है। इसी कारण स्वमूत्र को शिवाम्बु भी कहा जाता है। शिवाम्बु स्वयं द्वारा स्वयं की आवश्यकतानुसार रासायनिक प्रयोगों द्वारा निर्मित स्वास्थ्यवर्धक जीवनोपयोगी दवा है। आज वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शिवाम्बु शरीर से गुर्दो द्वारा रक्त के शुद्धीकरण से प्राप्त जीवनोपयोगी जल का वह भाग है, जिसमें शरीर के लिए उपयोगी सैकड़ों ऐसे तत्त्व होते हैं, जिनका शरीर तत्काल उपयोग नहीं कर पाता और उनको संचय करने तथा रखने के लिए शरीर में अलग से व्यवस्था नहीं होने से उसको विसर्जित करना पड़ता है। ऐसे उपयोगी तत्त्व जो आवश्यकता से ज्यादा होते हैं, शिवाम्बु के माध्यम से शरीर के बाहर आते हैं। जैसे जब कभी हमारे पास पैसे अधिक होते हैं, तत्काल जिनकी आवश्यकता न हो, तो हम उस धन को बैंक में अथवा अन्य किसी के पास जमा करवा देते है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर हम उन्हें पुन: प्राप्त कर सकें। इस चिकित्सा को सभी प्रमुख धर्मो के धर्म ग्रन्थों का समर्थन प्राप्त है।

स्वास्थ्यवर्धक अवयवों का खजाना : मानव-मूत्र

शिवाम्बु में सैकड़ों उपयोगी खनिज, रसायन, हारमोन, एन्जाइम, विटामिन, क्षार, पोषक तत्त्व, विष नाशक, रोग निवारक, पीड़ा को शान्त करने वाले, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता और ताकत बढ़ाने वाले तत्त्व होते हैं, जो निष्क्रिय अंगों को सक्रिय बनाने, रक्त के शुद्धीकरण, पाचन एवं श्वसन तंत्र की विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को सुव्यवस्थित, नियन्त्रित और संतुलित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मानव मूत्र में पाए जाने वाले सभी तत्त्व शरीर में विभिन्न अंगों के लिए गुणकारी होते हैं। मानव मूत्र सभी प्रकार के विष के प्रभाव को शमन करने वाला होता है। केवल मानव मूत्र ही ऐसा विषनाशक रसायन है जिससे किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता। शिवाम्बु शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ाता है जिससे इसके नियमित सेवन करने वालों को किसी वायरस संबंधी रोग होने की संभावनाएँ क्षीण हो जाती हैं। गत वर्षो में भारत में चिकनगुनिया, स्वायन फ्लू, डेंगू आदि विभिन्न संक्रमित बीमारियाँ फैली, परन्तु शायद ही कोई शिवाम्बु साधक को वे परेशान कर सकीं। कारण कि शिवाम्बु शरीर के लिए रोग सुरक्षा कवच की भांति काम करता है। पर्वतारोही एवं युद्ध में सैनिक अपने साथ रखे पानी के भण्डार में कमी होने पर प्राय: स्वमूत्र पीकर ही जीवित रहते हैं। मानवमूत्र शक्तिवर्धक रसायन की भांति कार्य करता है। इसी कारण स्वमूत्र पान कर लम्बे उपवास करना अपेक्षाकृत सरल होता है।

इस चिकित्सा में रोग का निदान करते समय किसी चिकित्सक की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक रोगी की आवश्यकतानुसार उसके स्वमूत्र में गुण होते हैं। अत: स्वमूत्र को विश्वसनीय घरेलू चिकित्सक कहा जा सकता है।

स्वमूत्र पान से दर्द को सहन करने की क्षमता बढ़ती है। इसी कारण जब अपराधियों को पुलिस दण्ड देती है, वे स्वमूत्र पी लिया करते हैं। शिवाम्बु द्वारा रोगोपचार के साथ स्वाध्याय, ध्यान, भक्ति, प्रार्थना आदि प्रवृत्तियों से उसकी प्रभावशीलता बढ़ जाती है। आज सैकड़ों आधुनिक चिकित्सा विशेषज्ञ, राजनेता, फिल्म अभिनेता, शिक्षाविद् अपने स्वास्थ्य हेतु स्वमूत्र का पान कर रहे हैं। जिस घर में स्वमूत्र चिकित्सा को पारिवारिक चिकित्सा के रूप में मान्यता मिल जाती है अर्थात् सभी परिजन अपना लेते हैं, वह परिवार बड़ा भाग्यशाली होता है। उस घर में चिकित्सकीय खर्च बंद हो जाता है, उपचार हेतु समय का दुरुपयोग समाप्त हो जाता है। घर के बालक-बालिका, प्रौढ़-प्रौढ़ा-वृद्धा सभी रोग मुक्त हो दीर्घायु को प्राप्त करते हैं।

आधुनिक चिकित्सा की दवाओं में बढ़ता शिवाम्बु का प्रयोग

शिवाम्बु में उपकारक तथा रोग प्रतिकारक ऐसे निर्दोष रासायनिक तत्त्व मिले हैं, जो रोगी और नीरोगी दोनों के लिये उपादेय होते हैं। फलस्वरूप विश्व के आधुनिक दवा निर्माताओं ने शिवाम्बु से प्राप्त जीवनोपयोगी आवश्यक तत्त्वों तथा अन्य भौतिक तत्त्वों के योग से कैन्सर, एड्स, टी.बी., हृदय रोग, दमा, नपुंसकता, गुर्दा आदि के असाध्य रोगों के उपचार हेतु बहुमूल्य प्राणदायिनी दवाइयों और इंजेक्शनों का व्यापक पैमाने पर निर्माण प्रारम्भ कर दिया है। हृदय रोगियों को दिया जाने वाला Urokine, जो महिलाएँ गर्भवती नहीं होती, उनके लिए दी जाने वाली Profasi तथा अन्य असाध्य रोगों के लिए उपयोगी Serocruption Bromocriptine, Meprate, Ukidon, Perjonal (11mg), Metrodin HP Urofollitrophin (FHS) आदि अनेक दवाइयों के निर्माण में शिवाम्बु का प्रयोग होता है।

सभी रोगों की एक दवा

दुनिया में रोग मुक्त होने के लिए हजारों दवाइयाँ उपलब्ध हैं, जिनका रोगों की रोकथाम, उपचार एवं परहेज के रूप में सेवन किया जाता है। सभी दवाओं का शरीर के अंगों पर अपना अलग-अलग प्रभाव अथवा दुष्प्रभाव पड़ता है। आँख के रोगों की दवा कान में नहीं डाली जा सकती। नाक में डालने वाली दवा मुँह से नहीं ली जा सकती, पीने वाली दवा त्वचा पर नहीं लगायी जा सकती। परन्तु शिवाम्बु स्वयं के द्वारा स्वयं के शरीर से निर्मित ऐसी दवा है, जिसका उपयोग चाहे कान हो या आँख, नाक हो या मुँह, सिर दर्द हो या दांतों का दर्द, त्वचा के रोग हों अथवा पेट या प्रजनन सम्बन्धी शरीर के रोग ही क्यों न हो, सभी में स्वस्थ रहने हेतु बेहिचक प्रयोग में लिया जा सकता है। अत: शिवाम्बु को अमरोली अथवा अमृत कहा जाए, तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होती।

शिवाम्बु के प्रयोग की विधियाँ

शिवाम्बु का प्रयोग अलग-अलग रोगों में अथवा रोकथाम हेतु अलग-अलग ढंग से किया जाता है। पीने के लिए प्रात:कालीन प्रथम शिवाम्बु सर्वश्रेष्ठ होता है। रात में निद्रा में व्यक्ति अपने मानवीय स्वभाव में ही होता है। कोई व्यक्ति कितना भी क्रूर, हिंसक, क्रोधी, निर्दय, अशान्त क्यों न हो, निद्रा में तो वह शांत और तनाव मुक्त ही होता है। अत: उस समय शरीर में जो हारमोन निर्मित होते हैं, वे विशेष स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। अत: प्रात:कालीन शिवाम्बु अधिक लाभदायक होता है। परन्तु जो शान्त, तनाव मुक्त, समभाव की साधना करने वाले, ध्यान अथवा भक्ति में सदैव लीन रहते हैं, वे कभी भी अपने शिवाम्बु का प्रयोग कर सकते हैं। अत: जैन संत एवं श्रावक जो किन्हीं कारणों से प्रात:कालीन (सूर्योदय से पूर्व के प्रथम) शिवाम्बु का नियमित सेवन न कर सकें, उन्हें स्वाध्याय, ध्यान, सामायिक, भक्ति के पश्चात् विसर्जित (सूर्योदय के पश्चात् उपलब्ध प्रथम) शिवाम्बु का सेवन करना चाहिए। मैंने स्वयं शिवाम्बु का सेवन विभिन्न परिस्थितियों में किया। जैसे भोजन के पूर्व, भोजन के पश्चात्, भोजन के बीच में, बिना उपवास दिन भर के शिवाम्बु का सेवन किया, फिर भी किसी प्रकार के दुष्प्रभावों का अनुभव नहीं किया।

उपवास के साथ शिवाम्बु का सेवन करने से शरीर को ताकत मिलती है तथा दीर्घ तपस्या आसानी से की जा सकती है। अन्य समय का शिवाम्बु भी हानिकारक नहीं होता। दीर्घकालीन तपस्या करने वालों का मूत्र अत्यधिक प्रभावशाली होता है एवं उसके सेवन से असाध्य रोगों में चमत्कारिक परिणाम आते हैं। इस संबंध में और अधिक शोध की आवश्यकता है। शिवाम्बु औषधि नहीं, रसायन है। अत: इसका प्रयोग मेरे व्यक्तिगत अनुभव के अनुसार कोई भी कभी भी कर सकता है, परन्तु जो नियम और विधि के अनुसार शिवाम्बु का सेवन करता है, उसको शीघ्र लाभ होता है। इसी कारण विदेशों में जहाँ माँसाहार एवं शराब का सेवन अधिक होता है, शिवाम्बु का पान करने वालों के किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव पड़ने के उदाहरण मेरी जानकारी में नहीं हैं, भले ही शिवाम्बु पान का लाभ उन्हें न मिला हो। शिवाम्बु पीने के बाद कम से कम आधा घंटे तक कुछ भी खाना पीना नहीं चाहिए। आँखों में, कान में, मुँह में, एनिमा आदि के रूप में ताजा शिवाम्बु को ही उपयोग में लेना चाहिये, परन्तु त्वचा सम्बन्धी रोगों में जितना पुराना शिवाम्बु होता है, उतना अधिक प्रभावशाली होता है। शिवाम्बु में कुछ समय पश्चात् जीवों की उत्पत्ति होने लगती है। अत: जैन संत एवं श्रावक पुराने शिवाम्बु का प्रयोग वर्जित मानते हैं। पांच मिनट ताजे उबाले हुए शिवाम्बु को ठण्डा कर पुराने शिवाम्बु के स्थान पर उपयोग में लिया जा सकता है। असाध्य रोगों में शिवाम्बु पीना, रोगी के शिवाम्बु के इंजेक्शन लगाना, शिवाम्बु का एनिमा लेना,

रोगग्रस्त निष्क्रिय भाग पर शिवाम्बु का मसाज करना अथवा उस भाग को शिवाम्बु से गीला रखना पड़ता है। लम्बी तपस्या करने वालों का शिवाम्बु लम्बे उपवास न कर सकने वाले असाध्य रोगियों के उपचार हेतु बहुत अधिक लाभकारी होता है। व्यक्ति को शिवाम्बु का अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए अनुभवी शिवाम्बु चिकित्सक से इसके सेवन की विधि, परहेज एवं सावधानियों के बारे में विस्तृत परामर्श कर लेना चाहिए, अन्यथा अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होंगे, भले ही इसके दुष्परिणाम न भी हों।

मूत्रोपचार से पूर्व मूत्र परीक्षा आवश्यक नहीं

मूत्रपान हेतु विसर्जित मूत्र ही अधिक प्रभावशाली होता है। प्राय: शिवाम्बु के साथ अन्य औषधियाँ नहीं लेनी चाहिए, परन्तु अगर किसी कारणवश दवा न छोड़ सकें तो मूत्रपान एवं दवा के बीच जितना अधिक अन्तराल रख सकें, रखना अच्छा रहता है।

मूत्र कैसे कार्य करता है?

सर्वप्रथम यह शरीर की सफाई करता है। तत्पश्चात् अवरोधों को दूर करता है एवं अंत में रोग से उत्पन्न नाशक तत्वों के द्वारा गन्दे किये हुए रास्तों तथा प्रमुख अंगों का पुन:निर्माण करता है। यह केवल फेफड़ा, जिगर, दिमाग, हृदय आदि का पुन:निर्माण ही नहीं करता, बल्कि दिमाग की लाइनिंग एवं अन्य लाइनिंग की मरम्मत भी करता है।

स्वमूत्रपान के बाद शरीर की आंतरिक सफाई शुरू हो जाती है और भीतर जमा विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर निकलने लगते हैं जो उपचार के शुभ संकेत हैं, परन्तु इसे रोगी और उसके शुभचिंतक स्वमूत्रपान से उत्पन्न नया रोग मानकर इसे तुरन्त बंद करने का परामर्श देने लगते हैं, जो उचित नहीं। चन्द दिनों के शिवाम्बु के विधिवत् उपचार से लक्षण नष्ट हो जाते हैं। अगर उचित समझें तो अन्य चिकित्सकों से परामर्श करने के स्थान पर अनुभवी शिवाम्बु चिकित्सक से परामर्श करें।

शिवाम्बु का सेवन कैसे प्रारम्भ करें?

जो नीरोग हैं, परन्तु शरीर को स्वस्थ रखना चाहतें हैं, वे केवल स्वमूत्र पान करके ही इस इच्छा को पूरी कर सकतें हैं। हो सकता है कि वर्षो से बनी मानसिक अवरोध की प्रकृति एकाएक स्वमूत्र पीने की इजाजत न दे, तो एक-दो दिन में इसकी थोड़ी मालिश कर लें। तत्पश्चात् ताजा मूत्र से दाँतों को रगड़ें, कुल्ला करें, गरारा करें और एक चम्मच मूत्र पीएँ इस प्रकार कुछ ही समय में अरुचि खत्म होने पर एक कप पीना शुरु करें। सुबह का मूत्र थोड़ा नमकीन होता है। अतएव दो एक दिन सुबह का नाश्ता करने के एक घण्टे बाद, उपलब्ध मूत्र जो स्वच्छ और कम खारा होता है, उसे पिएँ। स्वस्थ मनुष्य के लिए सुबह का ताजा मूत्र

सबसे गुणकारी है। मूत्रपान प्रारम्भ करने के बाद इसमें तीखापन या खारापन क्रमशः कम होता जाता है। धीरे-धीरे आप अनुभव करेंगे कि आप के शरीर में स्फूर्ति का संचार हो रहा है, दैनिक कार्यों में भी थकावट नहीं मालूम पड़ेगी।

शिवाम्बु का स्वभाव पर प्रभाव

शिवाम्बु में विभिन्न प्रकार के हारमोन होने से इसके सेवन से मानव का स्वभाव बदलता है। व्यक्ति होशियार एवं मेधावी बनता है। स्मरण शक्ति तेज होती है। बुद्धि विकसित होती है। तनाव घटता है। निर्भयता एवं साहस विकसित होता है। चेहरे का तेज, वाणी में जोश एवं इन्द्रियों की क्षमता बढ़ती है। मनोबल दृढ़ होता है। जीवन में उत्साह बना रहता है। मन में शांति बढ़ती है। मांसाहारी को शाकाहारी बनने तथा दुर्व्यसनी को निर्व्यसनी बनने की स्वतः प्रेरणा मिलने लगती है और व्यक्ति सद्गुणों की ओर प्रेरित होने लगता है। मन की शांति बढ़ती है, जिससे व्यक्ति का चिन्तन एवं विचार प्रभावित होते हैं। साधक ध्यान, तप आदि आत्म-साधना में प्रगति करने लगता है। अर्थात् शिवाम्बु का विधिवत् सेवन करने से शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास में मदद मिलती है, जिसका विस्तृत विवेचन डामर तंत्र में किया गया है, जो अतिशयोक्ति नहीं, परन्तु अनुभूति परक सनातन सत्य है।

शिवाम्बु और भोजन

शिवाम्बु का हमारे भोजन एवं भावों से सीधा सम्बन्ध होता है। शिवाम्बु में प्रायः वे सभी तत्त्व होते हैं, जो हमारे भोजन में होते हैं तथा भावों के अनुसार हारमोन भी बनते हैं। शिवाम्बु का स्वाद भोजन के अनुसार बदलता रहता है। शिवाम्बु के स्वाद एवं गंध के अनुसार शरीर में रोग का सही निदान किया जा सकता है। स्वादहीन, गंधहीन, प्रातःकालीन प्रथम विसर्जित होने वाला शिवाम्बु अच्छे पाचन एवं स्वास्थ्य का प्रतीक होता है। यदि शिवाम्बु का प्रयोग करते समय भोजन के साधारण नियमों का पालन किया जाये, मैदे, शक्कर एवं नमक का कम उपयोग किया जाये, तले, भुने, तीखे-गर्म मसालों से मुक्त चटपटे भोजन से बचा जाए तथा सात्त्विक-प्राकृतिक ऊर्जा से परिपूर्ण भोजन किया जाये तो, पुराने, असाध्य, मारणान्तिक रोगों में भी चमत्कारी परिणाम मिलते हैं। मूत्र जब तक शरीर में रहता है, उसके गुण धर्म अम्लिक होते हैं, जो विसर्जित होने के पश्चात् क्षारीय बन जाते हैं। अतः अम्लिक भोजन करने वालों को भोजन के पश्चात् शिवाम्बुपान विशेष लाभप्रद होता है।

शिवाम्बु सेवन की मात्रा

शिवाम्बु गर्म प्रकृति का होने से इसको पीने की एक जैसी विधि का निर्धारण

न्यायसंगत नहीं हो सकता। सर्दी के मौसम में एवं कफ प्रकृति होने पर उसका स्वविवेक के साथ अधिकाधिक प्रयोग कर सकते हैं। वर्षा के मौसम में शिवाम्बु की मात्रा सर्दी की अपेक्षा थोड़ी कम तथा गर्मी के मौसम में तथा पित्त प्रकृति होने पर शिवाम्बु का पान कम करना चाहिए।

जो व्यक्ति दुर्व्यसनों से ग्रसित है, अथवा किसी प्रकार की दवा ले रहा है अथवा जिसका खानपान सात्त्विक नहीं है, वह शिवाम्बु का सेवन अधिक करता है तो थोड़े समय में ही उसके दुर्व्यसन छूट जाते हैं, दवा बंद हो जाती है तथा सात्त्विक खाने के प्रति आकर्षण बढ़ने लगता है। इसी प्रकार जिनके शरीर में मोटापा अथवा चर्बी ज्यादा है, उन्हें शिवाम्बु का सेवन अधिक मात्रा में करना चाहिये।

विविध चिकित्साओं के साथ शिवाम्बु का प्रयोग

हथेली और पगथली में शिवाम्बु का मर्दन करने से वहाँ जमे विकार अपना स्थान छोड़ने लगते हैं। अत: उसके पश्चात् वहाँ किया गया एक्यूप्रेशर उपचार, अधिक प्रभावशाली हो जाता है। शिवाम्बु को चुम्बक पर रखने से उसमें चुम्बकीय गुण, रंगीन बोतलों में धूप में रखने से अथवा अन्य विधि द्वारा रंगों की प्रकाश किरणें डालने से रंगों के गुण, पिरामिड पर रखने से, मंत्रोपचार द्वारा भावित करने से, एनर्जी स्टिक घुमाने अथवा स्फटिक के पास रखने से, अतिरिक्त ऊर्जा का संचय होने से, उसकी प्रभावशालिता बढ़ जाती है, तथा एक साथ समग्र चिकित्सा का लाभ मिलने लगता है।

शिवाम्बु से होने वाले तात्कालिक उपचार एवं अन्य उपयोग

1. हिलते हुए दांतों को पुन: मजबूत करने के लिये तथा दांतों संबंधी अन्य रोगों में ताजे शिवाम्बु को मुंह में भरकर दिन में तीन-चार बार पंद्रह से बीस मिनट तक घुमाने से अधिकांश दांतों के रोग ठीक हो जाते हैं।
2. आंखों के सभी रोगों में, नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए, चश्मे के नम्बर कम करने के लिए, प्रतिदिन तीन-चार बार आंखों को ताजे शिवाम्बु (तीन-चार मिनट ठंडा होने के पश्चात्) को आई कप में डालकर से धोने, साथ ही नाक से नेति एवं नाक से शिवाम्बु पीने से चमत्कारी परिणाम आते हैं।
3. यदि रोगी का पेशाब बंद हो तो, अन्य स्वस्थ व्यक्ति का शिवाम्बु पिलाने से मूत्र में आया अवरोध दूर हो जाता है। उसके पश्चात् रोगी अपने स्वयं के शिवाम्बु का सेवन कर सकता है। यथासंभव पुरुष को पुरुष एवं महिलाओं को स्वस्थ महिला का ही शिवाम्बु पिलाना चाहिए।

4. सांप, बिच्छु अथवा शरीर में अन्य किसी भी प्रकार का ज़हर फैलने पर शिवाम्बु पीने से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। यदि रोगी का शिवाम्बु उपलब्ध न हो तो अन्य स्वस्थ व्यक्ति का शिवाम्बु तुरंत पिलाया जा सकता है।
5. रोगी को जहाँ तक हो, अपने शिवाम्बु का ही सेवन करना चाहिये, भले ही मधुमेह के कारण मूत्र में शर्करा अथवा कैंसर आदि रोगों के कारण, उसमें पीब अथवा बदबू कितनी ही क्यों नहीं आती हो।
6. शिवाम्बु में रोग प्रतिरोधक क्षमता होने के कारण विदेशों में अनेक शल्य चिकित्सक चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले एवं बाद में शिवाम्बु का इंजेक्शन देते हैं। बच्चों को शिवाम्बु पिलाने से उनको चेचक, पोलियो, डी.पी.टी., हेपेटाईटस जैसे टीकों के लगाने की आवश्यकता नहीं होती और न टीकों के दुष्प्रभावों का खतरा ही रहता है।
7. सभी असाध्य रोगों में चाहे कैंसर हो अथवा एड्स या एंथ्रेक्स शरीर की प्रतिरोधात्मक क्षमता बढ़ाने हेतु शिवाम्बु का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, जो शिवाम्बु के चमत्कारी प्रभावों का प्रतीक है। जिस प्रकार चूने की डली पर पानी डालने से वह बिखरती है उसी प्रकार कैंसर की गठानें शिवाम्बु के सम्पर्क से बिखर कर मल के साथ बाहर निकलने लगती हैं। अत: इस विधि में किसी भी रोग में शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती।
8. शिवाम्बु सर्वोत्तम एन्टीबायोटिक, शेविंग क्रीम, शेविंग का साबुन, शेविंगलोशन, बालों को मुलायम बनाने वाला शैम्पू, दांतों को साफ करने वाला दंतमंजन है। इसी कारण विदेशों में सौंदर्य प्रसाधनों तथा दंतमंजनों में शिवाम्बु का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। आज सौंदर्य-प्रसाधन के नाम पर जीवों पर जो निर्दयता, क्रूरता, हिंसा हो रही है, उन सबका शिवाम्बु एकमात्र सस्ता, सुन्दर, प्रभावशाली दुष्प्रभावों से रहित अहिंसक विकल्प है।
9. विदेशों में सौंदर्य-प्रसाधन के निर्माण में, विलास की सामग्री में, वस्त्रों को डाई करने में मूत्र का प्रयोग होता है। इंग्लैण्ड के रसायन-विशारदों ने मूत्र के क्षारों से श्रेष्ठ प्रकार के नहाने के साबुन तथा कीमती क्रीम तैयार किए हैं। अमेरिका के श्री जे.एन.लिलेज ने अपनी पुस्तक "दी आर्ट ऑफ क्रैट एण्ड डाइंग में लिखा है कि कॉटन, लिनेन, सिल्क एवं ऊन के फैब्रिक्स की डाई मूत्र द्वारा करने से उनका रंग धूप में या धोने से नहीं छूटता और कुछ रसायन मिलाने से कई अच्छे चमकदार रंग आ जाते है।
10. उषाःपान करने वालों को प्रात: प्रथम शिवाम्बु का पान करना चाहिए। उसके कुछ समय पश्चात् उषाःपान कर पेट का हलका व्यायाम करने से अथवा मूल और उड्डियान बंध

लगाने से आंतों की सफाई प्रभावशाली ढंग से हो जाती है।

11. शिवाम्बु विषनाशक एवं रोग प्रतिकारात्मक क्षमता वाला होने के कारण यह चोट, घाव, जलने एवं चर्म रोग में प्रभावकारी उपचार प्रदान करता है। प्रभावित अंग पर बाहर से लगाने पर यह खून बहना बंद कर देता है, दर्द मिटाता है एवं तेजी से घाव भरता है। स्वमूत्र से अच्छे हुए घावों में निशान नहीं रहते।
12. श्वसन संबंधी रोगों में स्वमूत्र नाक द्वारा पीने से रोग तो दूर होता ही है, प्रदूषित वायु के दुष्प्रभाव का प्रतिकूल असर पड़ने की संभावना क्षीण हो जाती है। शुरू में नाक से मूत्र पीने में कठिनाई का अनुभव अवश्य होता है, इसलिए पहले नाक से कुछ दिनों तक उसे खींचना चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाने पर एक वक्त का मूत्र नाक से ही पीने का प्रयास करें।

शिवाम्बु के प्रति जनजागरण

महाराष्ट्र के कोल्हापुर में भारत का प्रथम शिवाम्बु चिकित्सालय कार्यरत है। गुजरात, महाराष्ट्र और आगरा में भी शिवाम्बु शोध संस्थान कार्यरत हैं तथा सैकड़ों अनुभवी शिवाम्बु-प्रेमी रोगियों को अपने अनुभव के आधार पर परामर्श देकर मानव सेवा के कार्य में जुटे हैं। स्वास्थ्य मंत्रालय का अपेक्षित सहयोग एवं प्रोत्साहन न मिलने के बावजूद आज शिवाम्बु पर राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों के आयोजन नियमित रूप से हो रहे हैं, जिसमें शिवाम्बु पर देश के मूर्धन्य अनुभवी चिकित्सक अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं एवं पीड़ित मानवता की सेवा में अपना अमूल्य योगदान देते हैं। इसी उद्देश्य से आचार्य हस्ती अहिंसा शोध संस्थान एवं अखिल भारतीय शिवाम्बु संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में 19 एवं 20 अप्रेल 2014 को जोधपुर में छट्ठा राष्ट्रीय शिवाम्बु सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है जिससे स्वयं को स्वयं द्वारा स्वस्थ रखने वालों को आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त हो सके।

शिवाम्बु पर आज सैकड़ों पुस्तकें एवं आलेख विश्व भर में विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रहे हैं, फिर भी पूर्वाग्रह से ग्रसित मान्यताओं तथा स्वमूत्र के प्रति घृणा भावना के कारण जनसाधारण व्यापक रूप से इस पद्धति को नहीं अपना पाया हैं।

सरकारी उपेक्षा एवं हमारा दायित्व

सुलभ और गुणकारी, आरोग्य का साधन शिवाम्बु अपने अन्दर रखते हुए उससे हम उसी प्रकार वंचित हैं जैसे हिरन की नाभि में कस्तूरी होती है, परन्तु उसे उसका मालूम नहीं होता। भारत जैसे गरीब देश के लिए शिवाम्बु जैसी सरल, सस्ती, अहिंसक, वैज्ञानिक,

प्रभावशाली, सहज, सुलभ, स्वावलम्बी पद्धति जो सबके लिए सभी स्थानों पर उपलब्ध हो, परन्तु सही जानकारी एवं भ्रामक धारणाओं के कारण उपयोग में न ली जाए, तो हमारा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। अत: मानवतावादी दृष्टिकोण वाले सभी स्वास्थ्य प्रेमियों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि, जन-जन तक शिवाम्बु सम्बन्धी जानकारी पहुँचाएँ तथा गरीब, अशिक्षित स्वास्थ्य प्रेमियों को रोग-मुक्त जीवन व्यतीत करने के पुनीत सेवा कार्य में अपनी अहं भूमिका निभाएं। ''शिवाम्बु चिकित्सा में रोग के निदान की भी आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि शरीर में रोगों की आवश्यकतानुसार ही इसका निर्माण होता है। शिवाम्बु का सम्यक् उपयोग अपने आप में चिकित्सा है तथा आधुनिक चिकित्सा में कार्य में ली जाने वाली अनेक दवाइयों का एक मात्र प्रभावशाली विकल्प है।''

-चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 (राज.)

फोन: 0291-2621454, 94141-34606

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealthzone.in

स्वास्थ्य-आलेख प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता

जिनवाणी के इस अंक में प्रकाशित 'स्वास्थ्य-विज्ञान' स्तम्भ पर कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं, आप इनका उत्तर 15 फरवरी 2014 तक श्री चंचलमल जी चोरडिया के उपर्युक्त पते पर अपने फोन नं., ई-मेल एवं पते सहित सीधे प्रेषित कर सकते हैं। इस प्रतियोगिता में किसी भी वय का व्यक्ति भाग ले सकता है। सर्वाधिक अंक प्राप्तकर्ताओं को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार के अन्तर्गत 1000/-, 750/- एवं 500/- की राशि प्रेषित की जाएगी।

1. शिवाम्बु स्वास्थ्य का अमूल्य खजाना क्यों है?
2. शिवाम्बु कैसे कार्य करता है?
3. शिवाम्बु का उपयोग कब, कितना और कैसे करना चाहिए?
4. क्या आप शिवाम्बु का सेवन करते हैं? अगर हाँ, तो आपके अनुभव लिखिए और यदि नहीं तो क्यों?
5. शिवाम्बु के प्रचार हेतु आप क्या कर सकते हैं?
6. शिवाम्बु शरीर का सुरक्षा कवच कैसे है?
7. शिवाम्बु व्यसन छोड़ने एवं सौन्दर्य-प्रसाधनों का अहिंसक विकल्प कैसे है?

खेदाभिव्यक्ति

दिसम्बर-2013 के जिनवाणी अंक में पृष्ठ 112 पर गुलाबपुरा के सुश्रावक श्री भीमसिंह जी संचेती के नाम के पूर्व त्रुटिवश स्वर्गीय अंकित हो गया था। खेद व्यक्त करते हुए उनकी दीर्घायु की कामना करते हैं।-**सम्पादक**

बाल-स्तम्भ

समय का महत्त्व

साध्वी-युगल निधि-कृपा जी

बाल-स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित इस रचना को पढ़कर अन्त में दिए गए प्रश्नों के उत्तर 20 वर्ष की आयु तक के व्यक्ति 15 फरवरी 2014 तक जिनवाणी संपादकीय कार्यालय, सामायिक-स्वाध्याय भवन, कुम्हार छात्रावास के सामने, प्लॉट नं. 2, नेहरु पार्क, जोधपुर-342003(राज.) के पते पर प्रेषित करें। उत्तर के साथ अपनी आयु तथा पूर्ण पते का भी उल्लेख करें। श्रेष्ठ उत्तरदाताओं को श्री महावीरचन्द जी बाफना, जोधपुर द्वारा अपनी धर्मपत्नी एवं श्रीमती अरुणा जी, श्री मनोजकुमार जी, श्री कमलेश कुमार जी बाफना की माताश्री स्व. श्रीमती मोहिनीदेवी जी बाफना की पुण्य-स्मृति में पुरस्कृत किया जा रहा है। पुरस्कारों की राशि इस प्रकार है- प्रथम पुरस्कार-500 रुपये, द्वितीय पुरस्कार-300 रुपये, तृतीय पुरस्कार- 200 रुपये तथा 150 रुपये के पाँच सान्त्वना पुरस्कार।

जीवन में समय का बड़ा महत्त्व है। आज सारे संसार का ध्यान समय की ओर है। समय हमारी गति का, प्रगति का हाल-चाल का केन्द्र बिन्दु बन गया है। समय का महत्त्व दो कारणों से है। पहली बात तो यह है कि समय रुकता नहीं और दूसरा कारण यह कि समय कभी लौटता नहीं। चरम तीर्थंकर महावीर की अंतिम वाणी कहती है-

जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तइ।

अर्थात् जो रात्रियाँ बीत जाती हैं वे लौटकर नहीं आतीं। कहते हैं खोई हुई सम्पत्ति श्रम करने से दोबारा मिल सकती है। विस्मृत ज्ञान अध्ययन से और बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य दवाई से पुनः प्राप्त हो सकता है, लेकिन बीता हुआ समय फिर लौटकर नहीं आता।

समय का अर्थ है 'बदलना'। यदि कोई चीज परिवर्तित न हो तो समय का बोध नहीं हो पाएगा। सुबह सूरज निकलता है, फिर दोपहर होती है और शाम हो जाती है। बच्चा था, जवान हो गया, जवान से फिर बूढ़ा हो गया। सरकना समय का स्वभाव है। पानी के सतत प्रवाह के समान ही समय की नदी का प्रवाह भी नहीं रुकता। तभी तो कहा है-

है समय नदी की धार जिसमें सब बह जाया करते हैं,
है समय बड़ा तूफान प्रबल पर्वत झुक जाया करते हैं।
अक्सर दुनिया के लोग समय में चक्कर खाया करते हैं,
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं जो इतिहास बनाया करते हैं।।

चार्ल्स फास्ट नामक मोची अपने काम में से एक घण्टे का समय निकालकर प्रतिदिन गणित का अध्ययन करता रहता था। एक दिन ऐसा आया कि वह अमेरिका का प्रसिद्ध गणितज्ञ बन गया। जितनी देर में कॉफी उबलती, उतनी देर तक के समय का प्रतिदिन उपयोग करके दार्शनिक लाँगफेलो ने 'इनफरनो' नामक ग्रंथ का अनुवाद कर डाला। गॅलेलियो ने अपनी डॉक्टरी जीवन की व्यस्तता में से समय निकालकर दूरबीन का आविष्कार किया था। माईकेल फैराडे जिल्दसाज का काम करता था। खाली समय वैज्ञानिक प्रयोगों में लगाता और तरह-तरह के प्रयोग करके एक दिन जिल्दसाज से वैज्ञानिक बन गया।

समय का जो सार्थक उपयोग कर लेता है वह कण-कण से सुमेरु खड़ा कर लेता है और नदी की बहती धारा से अपार रत्नराशि प्राप्त कर लेता है।

समय किसी का भी द्वार दोबारा नहीं खटखटाता

कहा भी है- Time and tide waits for none अर्थात् समय और लहरें कभी लौटकर नहीं आतीं। एक दार्शनिक चित्र प्रदर्शनी देखने गया। वहाँ उसने चित्र-विचित्र, रंग-बिरंगे, आकर्षक, मनमोहक अनेक चित्र देखे। एक चित्र उसने देखा जो बड़ा अजीब और अनोखा था। उसे देखकर वह रुक गया। उस चित्र में आगे बाल थे, पीछे गंजा था और पैरों में पंख लगे हुए थे। उस चित्र के नीचे बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था- मुझे पहचान कर मेरा नाम लिखिए। कुछ लोग तो उस चित्र को देखकर आगे चल पड़ते थे तो कुछ पल-दो-पल के लिए रुक जाते थे। कुछ लोग जिज्ञासा से निहारने लग जाते थे, परन्तु किसी को भी इसका रहस्य समझ में नहीं आता था। अतः चर्चा-वार्ता करते हुए लोग आगे सरक जाते थे। उस दार्शनिक ने चिन्तन की गहराई में उतरकर उस चित्र का नाम खोज लिया- 'यह समय का चित्र है।' समय के पैरों में पंख लगे होने से वह भागता है। आगे के बाल यह सूचित करते हैं कि आते हुए अवसर हमें दिखाई नहीं देते। पीछे जो बाल नहीं हैं, वे यह इंगित करते हैं कि बीते हुए अवसर को पकड़ा नहीं जा सकता।

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का हर कार्य निर्धारित समय पर करना चाहिए। यह अनुभूत है यदि समय पर स्टेशन नहीं पहुँचे तो गाड़ी छूट जाती है। समय पर गाड़ी चलाते हुए ब्रेक नहीं दबाया तो एक्सीडेंट हो जाते हैं। यदि किसान ने समय पर बीज नहीं बोये हों तो उसका साल बिगड़ जाता है। माली यदि समय पर पेड़-पौधों को पानी न दे तो वे सूखने लग जाते हैं। समय पर भोजन नहीं किया तो स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जैसे खेत सूखने पर वर्षा का मूल्य नहीं है, दीपक बुझने के बाद तेल डालना व्यर्थ है। इसी प्रकार समय बीत जाने पर पछताना व्यर्थ है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है-

का वर्षा जब कृषि सुखाने, समय चूकि पुनि का पछताने।

कहते हैं समुद्र में जब कोई तैरता है तो सामने हाथ रखता है। सामने हाथ फैलाकर वह आने वाली लहरों को पकड़ता है। उन उछलती चंचल तरंगों पर हाथ रखकर वह आगे बढ़ता है। यदि वह तैराक विपरीत दिशा में जो लौट चुकी लहरों को पकड़ने की चेष्टा करे तो वह डूब जाएगा। इसलिए कहा है बीती हुई लहर को मत देखो, सामने वाली लहर को पकड़ो और उसके सहारे आगे बढ़ो। कहा भी है-

सुना है समय के पर होते हैं,
पर मगर इतने निडर होते हैं।
उड़ते हैं कहाँ जाते हैं कुछ पता ही नहीं,
जो इन्हें पकड़ ले वही नर वीर होते हैं।।

बैंजामिन फ्रैंकलिन की पुस्तकों की दुकान थी। एक बार एक व्यक्ति दुकान पर आया और उसने कर्मचारी से पूछा- 'इस पुस्तक की कीमत क्या है?

उस कर्मचारी ने अपने नित्य क्रम के अनुसार बता दिया- 'सर! एक डालर।'

ग्राहक ने पूछा- 'क्या इससे कुछ कम दाम में आप इसे नहीं दे सकते?

कर्मचारी ने दृढ़ स्वर में कहा- 'जी नहीं।' यह सुनकर ग्राहक वहाँ से चला गया।

थोड़ी देर में इधर-उधर घूमकर वह दोबारा से उसी दुकान में आ गया और उसने पूछा- 'क्या बैंजामिन फ्रैंकलिन अंदर हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।'

फ्रैंकलिन उस समय अंदर बैठे हुए थे। बुलाने पर वे बाहर आए तो उस आगन्तुक ने पूछा- 'महाशय! इस किताब की कीमत कम से कम क्या लेंगे?'

फ्रैंकलिन ने कहा- 'सवा डॉलर।'

यह सुनते ही ग्राहक आश्चर्यचकित होकर बोला-'अभी-अभी तो आपके इस कर्मचारी ने इस पुस्तक का मूल्य एक डॉलर बताया था।'

फ्रैंकलिन ने विनम्रता से कहा- 'जी हाँ! किताब की तो वास्तविक कीमत एक डॉलर ही है और जो चौथाई डॉलर है, वह आपको मेरा वक्त नष्ट करने के कारण देना पड़ेगा।'

इतना सुनते ही आगन्तुक ने कहा-'अच्छा तो फिर एक कीमत बता दीजिए।'

फ्रैंकलिन ने कहा- 'अब इस पुस्तक की कीमत डेढ़ डॉलर है और आप मेरा जितना भी समय नष्ट करेंगे उतनी ही कीमत बढ़ती जाएगी।' यह कह कर वे भीतर चले गए। ग्राहक ने चुपचाप डेढ़ डॉलर देकर पुस्तक खरीद ली।

समय के उपयोग के लिए इतनी जागरूकता रखने वाला ही उसका लाभ उठा सकता

है। जो बीत गया है उसकी चिंता मत करो, जो अभी अनभिक्रांत है वह तुम्हारे सामने आ रहा है उसको देखो और उस आगत क्षण पर ध्यान केन्द्रित कर उसे सार्थक बना लो।

-'जीवन पाथेय' पुस्तक से संकलित

प्रश्न:-

1. समय को नदी की धार क्यों कहा है?
2. शब्दों के अर्थ बताइये- मोची, जिल्दसाज, वैज्ञानिक, अनभिक्रांत, विस्मृत।
3. इस आलेख में 'वीर' किसे कहा गया है।
4. कोई ऐसी घटना लिखें, जिसमें समय पर काम न करने से आप या कोई अन्य व्यक्ति कैसे परेशानी में पड़ा।
5. 'समय का सदुपयोग' विषय पर लघु निबन्ध लिखिये (150 शब्दों में)।

जिनवाणी कृपा से, है धर्म का उजाला

श्री मोहन कोठारी 'विनर'

जिनवाणी कृपा से, है धर्म का उजाला, हर कदम पे इसने, है हमको सम्हाला।
अमन चैन की चाह, रहती है मन में, हमको पिलाया, अमृत का प्याला।।
जिनवाणी कृपा से.....।।1।।

अहसानमंद हैं, जिनवाणी तेरे, चारों तरफ हैं, सुरक्षा के घेरे।
लाख शुक्र है, जिनवाणी माता, याद करें हम, सांझ सवेरे।
जिसने रखी है, श्रद्धा भक्ति, उसके संकट, तूने टाला।।
जिनवाणी कृपा से.....।।2।।

विचारों में आता है, तूफान जब-जब, तेरी मेहर से, थम जाता है तब-तब।
मन को समाधि, मिल जाती है, पाकर तेरा, पावन सम्बल।
भवों-भवों तक, साथ निभाना, हमको सदा है, तेरा सहारा।।
जिनवाणी कृपा से.....।।3।।

ऊँची मिली है, जिनवर की वाणी, लाखों तिर गये, इससे प्राणी।
सच्चे मन से, इसको ध्याओ, बढ़ती रहेगी, फिर पुण्यवानी।
भूलें न इसको, एक पल भी हम, अंतरमन से, फेरो माला।।
जिनवाणी कृपा से.....।।4।।

-जनता साड़ी सेण्टर, स्टेशन रोड़, दुर्ग-491001 (छत्तीसगढ़)

अभिव्यक्ति

वीतराग ध्यान-शिविर के अनुभव

एक मुमुक्षु

महावीर नगर जयपुर के सामायिक-स्वाध्याय भवन में 19 से 30 दिसम्बर 2013 तक वीतराग ध्यान-शिविर आयोजित हुआ। शिविर में तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी का सान्निध्य प्राप्त था। 125 साधकों, 12 महासतियों एवं 4 सन्तों ने इस शिविर का लाभ लिया। 13 धर्म सेवकों की सेवा के साथ शिविर की व्यवस्था अत्यन्त अनुशासित थी। 10 दिन के पूर्ण मौन के साथ हुई ध्यान-साधना से सभी साधक प्रसन्न थे। यह ध्यान-साधना समत्व के अभ्यास में सहायक है। मनुष्य प्रायः अनुकूल परिस्थिति में हर्षित एवं प्रतिकूल परिस्थिति में दुःखी होता रहता है, किन्तु यह साधना-पद्धति प्रज्ञा का विकास करती है, जिससे मनुष्य विषम परिस्थितियों में भी अपने को प्रसन्न रख पाता है। मुनिश्री के सान्निध्य में आयोजित शिविरों की सफलता का क्रम निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त हो रहा है। एक मुमुक्षु साधक के शिविर के अनुभव यहाँ प्रस्तुत हैं।-सम्पादक

आज 3 घण्टे का ध्यान सत्र पूर्ण कर स्व में स्थित होकर बाहर आया। धूप थोड़ी कड़क थी। सूर्य को देखा, मन में मौन स्पंदन हुआ– हे सूर्य! मत अभिमान कर मेरे भीतर भी सूर्य है जो मेरा निज स्वरूप है।

शिविर यद्यपि 19 दिसम्बर को प्रारम्भ हो गया था, किन्तु मेरी यात्रा आज 30 दिसम्बर को ब्रह्म मुहूर्त से प्रारम्भ हुई। सुबह के ध्यान में अत्यन्त प्रसन्नता एवं शांति का अनुभव हुआ। अल्पाहार के समय हाथ में दूध का गिलास था, मुख में दूध का सेवन किया तो उष्णता का संवेदन उदित हुआ। समभाव से देखना प्रारम्भ हुआ। दूध गर्म है तो उसे जानना है, ठण्डा है तो उसे जानना है। अपेक्षा एवं उपेक्षा की परतन्त्रता से स्वतंत्र होकर वर्तमान के सत्य को समभाव से स्वीकार करना है। चिन्तन चलने लगा कि ग्रंथों का अध्ययन इस ध्यान साधना के अनुभव से पुष्ट हो रहा है। दूध का घूँट मुख में ही था, पुनः समता से स्वयं का परीक्षण-निरीक्षण चल रहा था। जागृति का अनुभव करते हुए सोचा, यदि स्वाद का रस लेता तो मूर्च्छा में प्रवाहित हो जाता। यानी उदय भाव में बहकर पुनः मिथ्या में, जड़ता में, भ्रम में प्रविष्ट हो जाता। संवेदना को देखते-देखते संवर एवं निर्जरा का स्पष्ट अनुभव हुआ। अब तक जो शब्दों के माध्यम से जाना था, वह अनुभूत हुआ।

जो मेरा नहीं है उसे मेरा समझने की भूल मुझे नहीं करनी चाहिए। मैं और मेरा इन दोनों

के बीच सम्बन्ध-विच्छेद को जानना ही तत्त्व है। चित्त की समतामय शुद्ध अवस्था में जो तत्त्वों की श्रद्धा उपजे वही ज्ञान का सम्यक् आधार है, ऐसा अनुभव में आया। इस तत्त्व श्रद्धा से जो विवेक उत्पन्न होता है, उससे सहज ही साधक का आचरण या संयम हो जाता है।

अनादि के संस्कारों को दस दिन के स्वल्प समय में तोड़ने का यह महाभारत अद्वितीय है। शायद प्रबल पुण्य का उदय हुआ है कि ध्यान निमित्त प्राप्त हुआ।

जीवन की सच्ची आराधना

श्रीमती सुनीता नरेन्द्र डागा

है वीतराग ध्यान ही, जीवन की सच्ची आराधना,
आज्ञा गुरुदेव[1] की हमको है, अब सच्ची पालना,
है वीतराग ध्यान ही, जीवन की सच्ची आराधना।

सैद्धान्तिक विश्लेषण कर, गुरुवर[2] ने समझाया,
आगमों से पुष्टि कर, ध्यान का रस जगाया,
गागर में सागर भर, अनुपम मार्ग सुझाया,
नय-निश्चय प्रमाण से, अनेकान्तवाद या स्याद्वाद,
सबका निचोड़ इस वीतराग ध्यान में समाया,
है वीतराग ध्यान ही, जीवन की सच्ची आराधना।।1।।

कषायों का हो शमन, विषयों का कर वमन,
इन्द्रियों का हो दमन, आहार पर हो नियन्त्रण,
राग-द्वेष का कर निकन्दन, समता में हो रमण,
अनशन छोड़ ग्यारह तप की[3], होती है यहाँ आराधना,
इस पर पूर्ण मौन की यहाँ, होती है सुन्दर पालना,
है वीतराग ध्यान ही, जीवन की सच्ची आराधना।।2।।

आगम वचनों की है, इसमें सुंदर समीक्षा,
अनुशासन में रहने की, मिलती है हित शिक्षा,
करनी है अन्तर से, स्व से स्व की समीक्षा,

1. आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी महाराज
2. तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी
3. तप के अनशन, ऊनोदरी आदि जो 12 प्रकार हैं, उनमें से अनशन के अतिरिक्त शेष 11 तप ध्यान-साधना शिविर में अनुभूत होते हैं।

है अनित्य से नित्य की ओर यह यात्रा,
बड़ी अद्भुत है यह, वीतरागता की साधना,
है वीतराग ध्यान ही, जीवन की सच्ची आराधना।।3।।

अणु अणु में होता है संवेदन, करना है कर्मों का वेदन,
यह पुलकन, यह सिहरन, यह फड़कन होती देखो धड़कन,
यह उदय हुआ और इस क्षण में ही नष्ट हुआ,
देखो कैसे पल-पल रंग बदलती यह संवेदना,
शान्त चित्त, सजग चित्त से, मुक्त विकारों से हो जाना,
दृढ़ आत्मबल, पुरुषार्थ से है वीतराग पद को पाना,
बस वीतराग ध्यान में ही इस जीवन को लगाना,
है वीतराग ध्यान ही, जीवन की सच्ची आराधना।।4।।

(मदनगंज वीतराग ध्यान-शिविर पर अभिव्यक्ति)

-बोरिवली, मुम्बई (महा.)

यह वर्ष कुछ खास हो

श्री राजेन्द्र जैन 'राजा'

नव वर्ष! फिर स्वागत है तुम्हारा
स्वीकारो मित्रों! अभिनन्दन हमारा
इस वर्ष
अध्यात्म की आत्म ज्योति जले,
सुख समृद्धि का प्रकाश हो।
शान्ति, अमन और चैन का वास हो,
ऐसा हमारा सतत प्रयास हो।
यह वर्ष अन्य वर्षों से कुछ खास हो....।।1।।
करुणा मैत्री का सन्देश हो,
खत्म सारे परस्पर क्लेश हों।
रागद्वेष से मुक्त हो प्राणी,
कर्म निर्जरा का श्री गणेश हो।
यह वर्ष अन्य वर्षों से कुछ खास हो....।।2।।

-44/221, रजत पथ, मानसरोवर, जयपुर (राज.)

कविता

जीवन-बोध क्षणिकाएँ

श्री यशवन्तमुनिजी

उपवन

जो करता है स्व-इन्द्रियों का संगोपन,
निज कषायों का वमन,
व सद्गुरु को नमन,
उसका जीवन बनता है
मनमोहक सुन्दर सुवासित उपवन।

पाक

जब जीव को जीते-जी यह देह लगने
लगेगा खाक, तब समझना हमारा
चेतन हो रहा है पाक।

नाचीज़

योग्यता होने के बावजूद भी
जो खुद को समझता है नाचीज़,
वह हो जाता है हर दिल अजीज़,
और पा लेता है हर चीज़।

वर्तमान

जब साधक देखता है मात्र वर्तमान,
तब उसकी साधना होती है
सिद्धि की ओर प्रवर्तमान।
जो देखता है भूत और भावी, उसके
ऊपर कर्मोदय हो जाता है हावी।

प्रेक्षण

गत-अनागत का प्रेक्षण प्रमाद है,
वर्तमान का प्रेक्षण अप्रमाद है।

साक्षीभाव

साक्षी भाव दिलाता है स्वभाव,
साक्षीभाव है वह छाँव
जहाँ सन्ताप का आतप नहीं सताता
अपितु समाधिभाव उपजाता,
क्या है साक्षी भाव?
मन के अनुकूल व प्रतिकूल का चुनाव,
राग-द्वेष सहित मन का यह घुमाव
स्वात्म को छोड़ जड़ का जुड़ाव
यह है असाक्षी भाव
इससे बचकर स्व में स्थिर रहना
यह है साक्षीभाव।
जो भी है जैसा भी है
उसको बस जानना यही है
साक्षी भाव को स्वीकारना।

दुर्घटना

हे प्रभु! मेरे साथ चतुर्गति भ्रमण
रूप दुर्घटना क्यों घटी?
भगवान ने कहा-
अब तक तेरी दृष्टि
शुद्ध चैतन्य पर नहीं डटी
इसीलिए यह घटना घटी

-संकलित

कृति की 2 प्रतियाँ अपेक्षित हैं

नूतन साहित्य

डॉ. श्वेता जैन

गुणसौरभ गणिहीरा- लेखक- नौरतनमल मेहता, ***सम्पादक***- सौभाग्यमल जैन ***प्रकाशक***- सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार,जयपुर-302003, फोनः 0141-2575997, 2571163 ***पृष्ठ***- 10+336, ***मूल्य***- 100 रुपये मात्र, सन् 2013

जीवन तो सभी जीते हैं किन्तु लिपिबद्ध उन्हीं जीवनवृत्त के होते हैं, जिनकी गुणसौरभ से समाज सुवासित होता है। आचार्य श्री हीरा का जीवन आचारनिष्ठा, विनय, सरलता, संयमदृढ़ता, नियमप्रतिबद्धता जैसे दिव्य गुणों से समन्वित है। इन गुणों से वे स्वयं तो शोभित हैं ही, संत-सती समुदाय और श्रावक-श्राविकाओं को भी प्रेरित करते हैं। तीर्थंकर आदिनाथ भगवान के जन्म-कल्याणक की शुभ तिथि के दिन जन्मे आचार्य श्री का बाल्यकाल पीपाड़ और नागौर में समागत साधु-साध्वीवृन्द के सत्संग में बीता तथा यौवनकाल गुरुचरण सन्निधि में थोकड़े, आगम-ज्ञान, संस्कृत-प्राकृत के अभ्यास में पूर्ण हुआ। छोटी बहिन के वियोग से प्रगाढ़ वैराग्य भाव से युक्त आचार्य श्री की पीपाड़ में वि.सं. 2020 की कार्तिक शुक्ला षष्ठी को भागवती दीक्षा हुई। आपका संयम जीवन इस पुस्तक में आद्योपान्त निरूपित हुआ है। सन् 1991 से संघनायक के रूप में धर्मोपदेष्टा, धर्मनायक आचार्य श्री ने राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश आदि राज्यों में विचरण-विहार किया है, जिसकी विस्तृत विवेचना के साथ वर्षावास की गतिविधियों की रिपोर्ट भी प्रस्तुत पुस्तक में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आपके शासनकाल में दीक्षित संत-सती, आपकी दिनचर्या, जीवन-रेखा, आपके मुखारविन्द से बने शीलव्रतियों का ब्यौरा भी दिया गया है। इस प्रकार आचार्यश्री के जीवन के सभी आयामों को अपने में संयोजित कर यह पुस्तक आचार्य श्री के जीवनवृत्त का सुन्दर दस्तावेज है। आचार्यश्री के 50 वर्षीय संयमजीवन के घटना प्रसंगों को शब्दों में निबद्ध कर आगे की पीढ़ियों तक उपलब्ध कराने का सराहनीय कार्य इस पुस्तक के माध्यम से दीक्षा-अर्द्धशती के अवसर पर सम्पन्न हुआ है। आर्ट पेपर पर प्रकाशित इस पुस्तक में अध्यायों के प्रारम्भ में मनमोहक चित्रवीथि भी पाठकों को आकर्षित किए बिना नहीं रहती। आचार्यश्री हीरा के सुभाषित वचनों और भजनों से भी पुस्तक की गरिमा अभिवृद्ध हुई है।

उपासकदशांग सूत्र - ***सम्पादक*** - श्री प्रकाशचन्द जैन, ***प्रकाशक*** - सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार,जयपुर-302003, फोनः 0141-2575997, 2571163 ***पृष्ठ*** - 51+278, ***मूल्य*** -60 रुपये मात्र, सन् 2014

जिनवचनों के प्रति अनुरक्ति और भावयुक्त आराधना मिथ्यात्व, अज्ञानादि मलों को दूर करती है, संक्लेश समाप्त कर संसार सीमित करती है। यही है प्रभु की निकटता का मार्ग, इसे ही उपासना कहा गया है। उपासना करने वाले उपासक होते हैं। इस प्रकार के आनन्द, कामदेव आदि दस उपासकों या श्रावकों का वर्णन उपासकदशांग के दस अध्ययनों में हुआ है। आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के तत्त्वावधान में तैयार हुई इस पुस्तक के सम्पादक ने प्राक्कथन में दर्शन, व्रतधारी और प्रतिमाधारी तीन श्रावकों का निरूपण करते हुए ठाणांगसूत्र में कथित आठ प्रकार के श्रावकों की चर्चा की है तथा श्रावक के 21 गुण, 21 लक्षण, वचन व्यवहार और 12 व्रतों का निरूपण भी किया है। प्रश्नोत्तर के माध्यम से उपासकदशांग सूत्र के सम्बन्ध में विशेष जानकारी पाठकों को उपलब्ध है। 14 पृष्ठीय भूमिका श्री त्रिलोकचन्द जैन ने तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. की आगम-वाचना और चिन्तन के आधार पर लिपिबद्ध की है। सम्पूर्ण आगम में शीर्षकों के देने से विषय त्वरित रूप से बुद्धिगम्य होता है। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में सार-संक्षेप तथा अन्त में 'शिक्षाएँ' दी गई हैं। मूल, संस्कृत छाया, शब्दार्थ, भावार्थ के साथ कई आवश्यक विषयों के स्पष्टीकरण के कारण यह पुस्तक स्वाध्यायियों के लिए विशेष उपयोगी है।

आंगन की तुलसी - श्री गणेश मुनि शास्त्री, ***प्रकाशक*** - अमर जैन साहित्य संस्थान, गणेश विहार, सेक्टर 11, उदयपुर-313002 (राज.), फोन : 094132-86182, ***पृष्ठ*** - 158, ***मूल्य*** -200 रुपये मात्र, सन् 2013

कवि मुनि श्री ने राष्ट्र की ज्वलन्त समस्या 'कन्या भ्रूण हत्या' पर हृदय को स्पन्दित करने वाला, संवेदनशील, व्यंग्यात्मक एवं मार्मिक काव्यात्मक आलेखन किया है। कन्या भ्रूण हत्या पर काव्य संग्रह के रूप में यह प्रथम रचना कही जा सकती है। कविताओं के माध्यम से पिता, माता, दादा, दादी और समाज की मानसिकता उजागर हुई है। इस कृत्य में मुनिश्री ने डॉक्टर की बहुत बड़ी जिम्मेदारी बतलाकर तीक्ष्ण वचन बाणों से डॉक्टरी पेशे की कालिमा को प्रस्तुत किया है। स्थान-स्थान पर नारी की महिमा एवं उसकी शक्ति पर भी कविताएँ की हैं तथा 'सत्यमेव जयते' सीरियल द्वारा आमिर खान की उठाई गई आवाज को भी बुलन्द किया है। नारी की घटती संख्या से प्रभावित होने वाले कल का चित्रण करते हुए

संत लेखक ने अपनी ओर से अन्तिम कविता में समाधान भी प्रस्तुत किया है- ''धर्मशीला माताओं! भ्रूण हत्या जैसा घिनौना पाप करके अपनी दुर्गति मत बनाइये, यदि बेटी को नहीं पाल सको तो धर्म स्थानक के बाहर छोड़ जाइये। देव-गुरु-धर्म के प्रताप से वह नया जीवन पायेगी, बड़ी होकर शासन सेवा में चार चाँद लगायेगी।'' पुस्तक में ऐसी 71 गद्य-कविताएँ हैं, जिनसे कन्या का महत्त्व प्रतिपादित होता है तथा भ्रूण हत्या जैसे जघन्य पाप से बचने की प्रेरणा मिलती है। पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ रंगीन चित्रों से समलंकृत है एवं क्रान्तिकारी भावों से अनुप्राणित है।

मेरे गुरुवर हीरा हो तुम

श्री योगेश बाबू जैन

मोहिनी के बाल हो तुम, मोती के लाल हो तुम।
हस्ती की मिशाल हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुम।।

पीपाड़ के प्यारे हो तुम, गाँधी कुल उजियारे हो तुम।
श्रमणों के शृंगार हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुम।।

रत्नवंश की शान हो तुम, संयम के वरदान हो तुम।
संघ के प्रधान हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुम।।

गुणों के प्रदाता हो तुम, भक्तों के विधाता हो तुम।
आगमों के ज्ञाता हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुम।।

चन्द्र सम शीतल हो तुम, सूर्य सम उज्ज्वल हो तुम।
व्यवहार सम धवल हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुम।।

कवियों के कवि हो तुम, मुनियों की छवि हो तुम।
लेखक के अनुभवी हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुम।।

बच्चों के संस्कार हो तुम, युवाओं का आधार हो तुम।
प्रौढ़ों का आचार हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुमं।।

ज्ञान के आराधक हो तुम, संयम के साधक हो तुम।
'योगेश' के नायक हो तुम, मेरे गुरुवर हीरा हो तुम।।

-1/603, हाउसिंग बोर्ड, सवाईमाधोपुर (राज.)

समाचार-विविधा

विचरण-विहार एवं विहार दिशाएँ : एक नज़र में

(01 जनवरी, 2014)

- जिनशासन-गौरव परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा 7 बजरिया-सवाईमाधोपुर में विराज रहे हैं।
- परमश्रद्धेय उपाध्यायप्रवर पंडितरत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा 5 पीपाड़ में विराज रहे हैं।
- तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. आदि ठाणा 4 किशनगढ़ से दूदू होते हुए जयपुर पधारे हैं। यहाँ महावीर नगर में 19 से 30 दिसम्बर 2013 तक वीतराग ध्यान-शिविर आयोजित हुआ, जिसमें लगभग 125 साधकों ने भाग लिया। लगभग 13 साधकों ने सेवाएँ दी। सवाईमाधोपुर की ओर विहार संभावित है।
- साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.,तत्त्व चिन्तिका महासती श्री रतनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 11 पावटा स्थानक जोधपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 10 बजरिया-सवाईमाधोपुर विराज रहे हैं।
- विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 5 का लक्ष्मणगढ़ हरसाना की ओर विहार चल रहा हैं।
- विदुषी महासती श्री सौभाग्यवती जी म.सा. आदि ठाणा 5 भरतपुर से विहार करते हुए झर पधारे हैं। बस्सी होते हुए जयपुर की ओर विहार चल रहा है।
- व्याख्यात्री महासती श्री मनोहरकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 3 सर्वेश्वर नगर अजमेर विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 12 मौजी कॉलोनी, मालवीय नगर, जयपुर विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सरलेशप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 3 मानसरोवर जयपुर विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. आदि ठाणा 9 महावीर नगर जयपुर विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा. आदि ठाणा 4 का पनापाक्कम से बेंगलोर

की ओर विहार चल रहा है।

- **व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलता जी म.सा. आदि ठाणा 4 का पलमानेर से बेंगलोर की ओर विहार चल रहा हैं।**
- **व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवती जी म.सा. आदि ठाणा 5 का जायखेड़ा से मालेगांव की ओर विहार चल रहा हैं।**
- **व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 4 का धरण्डी से आगरा की ओर विहार चल रहा हैं।**
- **सेवाभावी महासती श्री विमलेशप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 5 खेरली विराज रहे हैं।**
- **व्याख्यात्री महासती श्री भाग्यप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 4 का निमली से बेंगलोर की ओर विहार चल रहा है।**

आचार्यप्रवर के सतत सान्निध्य लाभ से सवाईमाधोपुर क्षेत्र हर्षित

जन-जन की आस्था के केन्द्र, प्रवचनप्रभाकर, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक, ज्ञान सुधाकर, आगमज्ञ, परमाराध्य **परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा., महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. आदि ठाणा 7 एवं व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवर जी म.सा., महासती श्री सुमनलता जी म.सा. आदि ठाणा 10 का विचरण** नगरपालिका क्षेत्र वासियों की असीम पुण्यवानी से सवाईमाधोपुर के उपनगरों में चल रहा है। स्वास्थ्य में पर्याप्त समीचीनता न होने पर भी दैनिक ध्यान-मौन-स्वाध्याय आदि की प्रवृत्तियाँ सुचारू रूप से गतिशील हैं। दर्शनार्थ आगत बन्धुओं को सामायिक स्वाध्याय, माला, जाप आदि की प्रेरणा निरन्तर दी जा रही है।

सवाईमाधोपुर के यशस्वी एवं सार्थक चातुर्मास के पश्चात् 18 नवम्बर को पूज्य श्री का पदार्पण हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी के सामायिक-स्वाध्याय भवन में हुआ। यहाँ पर स्थानकवासी परम्परा के लगभग 125 परिवार रहते हैं। चातुर्मास के पश्चात् भी श्रावक-श्राविकाओं में उत्साह प्रशंसनीय रहा। प्रवचन-सभा में सामायिक-स्वाध्याय भवन छोटा ही पड़ता था। हाउसिंग बोर्ड के भाई-बहनों ने 1 दिसम्बर को सप्ताह में एक दिन धर्म-स्थान में आकर सामायिक करने का नियम लिया। 4 दिसम्बर को देई का श्रावक संघ शेषकाल फरसने, पौष शुक्ला चतुर्दशी एवं भागवती दीक्षा का लाभ प्रदान करने की विनति लेकर उपस्थित हुआ। 5 दिसम्बर को मुमुक्षु श्री अभयराज जी हींगड़-जयपुर एवं मुमुक्षु बहिन सुश्री माला जी जैन सुपुत्री श्री निर्मलकुमार जी जैन-हिण्डौनसिटी की दीक्षा हेतु स्वीकृति फरमाई गई। 12 दिसम्बर को कोटा के प्रमुख श्रावकगण पूज्य आचार्यप्रवर के वि.सं. 2071 के चातुर्मास की पुरजोर विनति

हेतु उपस्थित हुए।

13 दिसम्बर को पूज्य श्री विहार कर आलनपुर पधारे। इस दिन तीर्थंकर मल्ली भगवती का जन्म-कल्याणक एवं मौन एकादशी थी। अतः अच्छी संख्या में उपवास एवं एकासन की आराधना हुई। 73 बहनों ने व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवर जी म.सा. की पावन सन्निधि में मौन साधना के साथ पौषध व्रत की उपासना की। 16 दिसम्बर को विरक्ता बहिन शिल्पा जी की दीक्षा हेतु श्रावकरत्न श्री अमृतलाल जी सुराणा, हुबली ने आज्ञा पत्र प्रदान किया। 18 दिसम्बर को सवाईमाधोपुर से नवनिर्वाचित विधायक श्रीमती दियाकुमारी गुरुदेव के चरणों में दर्शनार्थ उपस्थित हुई। पूज्य श्री ने मंगल उद्बोधन में फरमाया-**जनता की सेवा करना, गरीबों के हितों का ध्यान रखना, अन्याय-अत्याचार करने वालों का सहयोग नहीं करना।** 19 दिसम्बर को आलनपुर से विहार कर पूज्य प्रवर महावीर नगर, मण्डी रोड़ पधारे। यहाँ पाँच दिन विराजे। 24 दिसम्बर को यहाँ से विहार कर बजरिया स्थित सामायिक स्वाध्याय भवन पधारे। यहाँ 26 दिसम्बर को अलीगढ़-रामपुरा का संघ पूज्य आचार्यप्रवर के वि.सं. 2071 के चातुर्मास की विनति हेतु सोत्साह उपस्थित हुआ। 27 दिसम्बर को भगवान पार्श्वनाथ का जन्मकल्याणक सामायिक साधना एवं सामूहिक एकाशना के साथ मनाया गया। 27 दिसम्बर को पंचदिवसीय छात्रवृत्ति शिविर का शुभारम्भ हुआ, जिसमें 146 बालक-बालिकाओं की सहभागिता रही।

पूज्य गुरुदेव के दर्शन-वन्दन एवं प्रवचन-श्रवण हेतु श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं का आगमन अनवरत बना हुआ है। जहाँ भी पूज्य गुरुदेव विराजे, उन सभी संघों की आतिथ्य सत्कार की भावना प्रमोदकारी रही।

उपाध्यायप्रवर का पीपाड़ में पदार्पण

कोसाणा चातुर्मास के अनन्तर 26 नवम्बर 2013 को **उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा., मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा.** आदि ठाणा 5 विहार कर साथिन होते हुए 29 नवम्बर को पीपाड़शहर के बाहर स्थित गुरु हस्ती चिकित्सालय में विराजे। 30 नवम्बर को श्रावक-श्राविका, युवक-युवती एवं बालक-बालिकाओं के द्वारा किये गये जयघोषों के साथ विहार करते हुए उपाध्यायप्रवर पीपाड़ के स्वाध्याय भवन में पधारे। आपके पीपाड़ पधारने से चातुर्मास की भांति धार्मिक गतिविधियाँ प्रारम्भ हो गईं। बालक-बालिकाओं एवं श्रावक-श्राविकाओं में ज्ञानार्जन का उत्साह बना हुआ है। उपाध्याय प्रवर के स्वास्थ्य में सुधार चल रहा है। यहाँ 30 नवम्बर को बहूबालिका मण्डल का गठन किया गया।

पल्लीवाल क्षेत्र के रत्नसंघीय श्रावक एवं श्राविकाओं का क्षेत्रीय सम्मेलन सानन्द सम्पन्न

खोह (जिला-अलवर)- अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ एवं अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल के तत्त्वावधान में पल्लीवाल क्षेत्र के श्रावक-श्राविकाओं का क्षेत्रीय सम्मेलन 22 दिसम्बर 2013 को रत्नसंघ के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री अमिताभजी हीरावत-जयपुर की अध्यक्षता तथा अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती पूर्णिमाजी लोढ़ा के मुख्य आतिथ्य में ग्राम खोह, जिला-अलवर (राजस्थान) सानन्द सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में प्रात:काल से ही पल्लीवाल क्षेत्र के विभिन्न गाँव व शहरों से श्रावक-श्राविकाओं का आना प्रारम्भ हो गया था। प्रवचन सभा में आगन्तुक दर्शनार्थियों ने परम विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 5 तथा व्याख्यात्री महासती श्री विमलेशप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 5 के दर्शन-वन्दन एवं प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया। प्रवचन सभा में महासती मण्डल ने सम्मेलन में पधारे लोगों को सामायिक-स्वाध्याय एवं धर्म साधना-आराधना की प्रेरणा करने के साथ श्रावक-श्राविकाओं को गृहस्थ समाचारी के बारे में विस्तार से बताया। प्रवचन सभा में विरक्ता बहिन सुश्री मालाजी जैन ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए बेंगलोर में दीक्षा महोत्सव में पधारने हेतु उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं को निवेदन किया।

प्रवचन सभा के पश्चात् क्षेत्रीय सम्मेलन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। कार्यक्रम के अध्यक्ष, मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथि सहित पल्लीवाल क्षेत्र के विभिन्न श्रीसंघों के अध्यक्षों/मंत्रियों ने मंच को सुशोभित किया। मंच पर वीर माता-पिता एवं तपस्वी भाई-बहिनों को भी ससम्मान मंच पर आमन्त्रित किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ वरिष्ठ स्वाध्यायी श्रीमती मिथलेशजी जैन-खोह के मंगलाचरण से हुआ। मंचासीन अतिथियों का माला व प्रतीक चिह्न से सम्मान किया गया। खोह संघ के अध्यक्ष द्वारा वहाँ पधारे हुए सभी अतिथियों एवं महानुभावों का भावभीने शब्दों से स्वागत किया गया। श्री अभिषेकजी जैन-खेरली द्वारा मधुर भजन प्रस्तुत किया गया। प्रमुख वक्ता के रूप में श्राविका मण्डल की कार्याध्यक्ष श्रीमती मीनाजी गोलेच्छा-जयपुर ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए संस्कारों की अभिवृद्धि पर बल दिया। श्राविका मण्डल की महासचिव श्रीमती बीनाजी मेहता-जोधपुर ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए आने वाली पीढ़ी को संस्कारित करने के लिए प्रयास करने पर बल दिया। रत्नसंघ के राष्ट्रीय संयुक्त महामंत्री श्री मानेन्द्रजी ओस्तवाल ने रत्नसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्रजी बाफना द्वारा प्रेषित सन्देश पढ़कर सुनाया। कार्यक्रम में पधारे हुए वीरमाता-पिताओं का माला व प्रतीक चिह्न द्वारा सम्मान किया गया। साथ ही इस वर्ष

चातुर्मास में तपस्या करने वाले श्रावक-श्राविकाओं का भी अभिनन्दन किया गया। खोह के जाये-जन्मे न्यायाधीश श्री धर्मचन्दजी जैन को भी संघ द्वारा सम्मानित किया गया। विरक्ता बहिन सुश्री मालाजी जैन-हिण्डौनसिटी का माला एवं प्रतीक चिह्न द्वारा अभिनन्दन किया गया। कार्यक्रम में श्रीमान दयाचन्दजी जैन परिवार द्वारा जरूरतमन्द लोगों को कम्बल वितरित किये गये। कार्यक्रम के अध्यक्ष माननीय श्री अमिताभजी हीरावत ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए खोह श्रीसंघ को धन्यवाद देते हुए सम्मेलन को गुरुभ्राताओं में एकता और सौहार्द की भावना की अभिवृद्धि के लिए सफल आयोजन बताया।

खोह श्रावक संघ, श्राविका मण्डल एवं युवक संघ के कार्यकर्त्ताओं ने दिन-रात परिश्रम करके कार्यक्रम को सफल बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। खोह श्रीसंघ के कार्यर्त्ताओं को आवास-निवास, पण्डाल एवं सुन्दर भोजन की व्यवस्था के लिए धन्यवाद ज्ञापित किया गया। हर्ष-हर्ष, जय-जय की ध्वनि के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

जलगांव में विशिष्ट स्वाध्यायी गुणवत्ता अभिवर्द्धन शिविर सम्पन्न

स्वाध्यायियों के ज्ञान की अभिवृद्धि हेतु श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर द्वारा समय-समय पर स्वाध्यायी गुणवत्ता अभिवर्द्धन शिविर आयोजित किये जाते हैं। उसी शृंखला में वरिष्ठ एवं प्रतिभावान स्वाध्यायियों का "गुणवत्ता अभिवर्द्धन शिविर"21 से 23 दिसम्बर 2013 को जलगांव (महा.) में कुसुम्बा गोशाला में आयोजित किया गया।

उक्त शिविर में मारवाड़, मेवाड़, जोधपुर, पोरवाल, पल्लीवाल तथा महाराष्ट्र के जलगांव एवं आसपास के क्षेत्रों के 60 वरिष्ठ स्वाध्यायियों ने भाग लिया। शिविर में वरिष्ठ प्रशिक्षक श्री फूलचन्द जी मेहता-उदयपुर, श्री हस्तीमल जी गोलेच्छा-ब्यावर, श्री प्रकाशचन्द जी जैन-जलगांव से विभिन्न विषयों पर विशेष मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। स्वाध्याय संघ के निदेशक श्री राजेन्द्र जी लुंकड़-इरोड ने भी एक दिन शिविर में पधारकर विशेष कालांश के माध्यम से स्वाध्यायियों को प्रशिक्षण प्रदान किया।

शिविर में आवास-निवास एवं भोजन की सुन्दर व्यवस्था शासन सेवा समिति के संयोजक श्री रतनलाल सी. बाफना द्वारा कुसुम्बा गोशाला में की गई।

-कुशलचन्द गोटेवाला, संयोजक

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न बहू-बालिका मण्डल के बढ़ते कदम

परम पूज्य संघनायक जिनशासन गौरव आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. की दीक्षा अर्द्ध शताब्दी की सम्पूर्ति के अवसर पर सवाईमाधोपुर में 9 नवम्बर 2013 को अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की साधारण सभा में एक नये आयाम के रूप में अखिल भारतीय श्री जैन रत्न बहू बालिका मण्डल का गठन किया गया। नवगठित संस्था के प्रमुख पदाधिकारी इस प्रकार हैं:- **अध्यक्ष**- श्रीमती इन्द्राजी बोहरा, चेन्नई-91768-06000, **कार्याध्यक्ष**-श्रीमती नीलूजी डागा, बीकानेर-93148-79797

राष्ट्रीय संघाध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्रजी बाफना द्वारा कार्याध्यक्ष श्रीमती नीलूजी डागा को पद एवं निष्ठा की शपथ दिलाई गई तथा संघ-संरक्षक मण्डल के संयोजक माननीय श्री मोफतराजजी मुणोत द्वारा जैन ध्वज प्रदान किया गया।

गठन के साथ ही बहू बालिका मण्डल के पदाधिकारीगण द्वारा संघ की विभिन्न शाखाओं में सम्पर्क कर पीपाड़, सवाईमाधोपुर, मैसूर, जयपुर, बेंगलोर आदि विविध क्षेत्रों में शाखा पदाधिकारियों को नियुक्त कर स्थानीय मण्डलों के गठन का कार्य प्रारम्भ किया गया है।

चेन्नई में 27 से 29 दिसम्बर तक रत्नबालिका-बहू मण्डल द्वारा त्रिदिवसीय शिविर का आयोजन किया गया, जिसका कुशल संचालन परामर्शदाता श्रीमती कौशल्याजी सालेचा द्वारा किया गया। शिविर में 30 बालिकाओं ने भाग लिया। शिविर समापन के अवसर पर अभिभावक सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें चेन्नई संघ, चेन्नई श्राविका मण्डल व चेन्नई युवक परिषद् के सदस्यों ने पूर्ण उत्साह से भाग लिया।

19-20 अप्रेल को शिवाम्बु एवं अहिंसात्मक चिकित्सा-पद्धतियों पर राष्ट्रीय संगोष्ठी जोधपुर में

आचार्य हस्ती अहिंसा शोध संस्थान के तत्त्वावधान में शिवाम्बु एवं अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों के छठे राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन जोधपुर में 19-20 अप्रेल 2014 को किया जा रहा है। इस सम्मेलन में देश भर के विभिन्न विशेषज्ञ चिकित्सक भाग लेंगे। सम्मेलन का आयोजन भुवाल माता मंदिर परिसर, ग्राम-बिरामी, जोधपुर में किया जाएगा। सम्मेलन में भाग लेने के इच्छुक प्रतिनिधियों का पंजीकरण 20 मार्च 2014 तक 500/- रुपये तथा उसके पश्चात् 600/- रुपये में किया जाएगा। पंजीकरण शुल्क प्रवेशपत्र के साथ ड्राफ्ट द्वारा अथवा सीधे ट्रस्ट के बैंक खाते में जमा कराया जा सकता है। बैंक खाता विवरण

इस प्रकार है- आचार्य हस्ती अहिंसा शोध संस्थान, एस.बी.आई, शाखा-शास्त्रीनगर, खाता संख्या-31085681999, **IFSC Code-SBIN** 000328 अन्य जानकारी हेतु सम्पर्क करें- श्री चंचलमल चोरड़िया, फोनः 0291-2621454, मोबाइल-094141-34606, Email- cmchordiajodhpur@gmail.com, Website-www.chordiahealthzone.in

महापुरुषों की जन्म शताब्दी, दीक्षा अर्द्धशती आदि के विशिष्ट प्रसंग

तीन-चार वर्षों पूर्व अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. की जन्म शताब्दी तप-त्याग पूर्वक मनायी गयी थी। कुछ माह पूर्व आचारनिष्ठ महापुरुष पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. एवं उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. की दीक्षा अर्द्धशती का प्रसंग था। इस वर्ष तेरापंथ संघ के आचार्य तुलसी, श्रमणसंघीय युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म. 'मधुकर' एवं उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' का जन्म शती वर्ष तप-त्याग एवं विभिन्न कार्यक्रमों के साथ मनाया जा रहा है। जोधपुर में 12 से 15 दिसम्बर 2013 तक ओसवाल कम्यूनिटी सेण्टर में प्रवर्तक श्री विनयमुनिजी भीम, प्रवर्तक श्री रूपमुनिजी 'रजत', संत-मण्डल एवं साध्वी कंचनकंवर जी आदि महासती मण्डल के सान्निध्य में श्री मिश्रीमल जी म.सा. 'मधुकर' का जन्मशताब्दी समारोह मनाया गया। उपाध्यायश्री कन्हैयालाल जी कमल का जन्मशती वर्ष उपप्रवर्तक श्री विनयमुनिजी म. 'वागीश' के सान्निध्य में अजमेर, किशनगढ़ आदि विभिन्न नगरों में मनाया गया है। कर्नाटक गजकेसरी खद्दरधारी श्री गणेशलाल जी म.सा. एवं आचार्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज का यह दीक्षा शताब्दी वर्ष भी है।

शिक्षा में आध्यात्मिक मूल्यों के समावेश पर अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी

चिन्मय इण्टरनेशनल फाउण्डेशन शोध संस्थान, वेलियानाड, जिला एर्नाकुलम् के द्वारा 14-19 नवम्बर 2013 तक Education in All Inclusive Universal Spirituality विषय पर एक अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में देश-विदेश के 80 विद्वानों-विदुषियों ने विभिन्न धर्म-दर्शनों में प्राप्त आध्यात्मिकता के उन बिन्दुओं की चर्चा की, जिनका समावेश शिक्षा में किया जा सकता है। जिनवाणी के सम्पादक डॉ. धर्मचन्द जैन ने इस संगोष्ठी में Conflict Removing Vision of Jainism (जैनदर्शन की विरोधनिवारक दृष्टि) विषय पर शोधालेख प्रस्तुत किया। संगोष्ठी का संयोजन प्रो. वी.एन.झा, पुणे, संस्था के निदेशक डॉ. डी.के.राणा एवं कनाडा के डॉ. एस.डी.तलवार ने किया।

करुणा अन्तरराष्ट्रीय का 16 वाँ राष्ट्रीय सम्मेलन बीकानेर में सम्पन्न

विद्यार्थियों के हृदय में अहिंसा, करुणा, निःस्वार्थ प्रेम, प्रकृति की रक्षा, पर्यावरण-संरक्षण एवं शाकाहार के मानवीय जीवन मूल्यों को नई पीढ़ी में स्थापित करने के उद्देश्य से स्थापित 'करुणा अन्तरराष्ट्रीय' (Karuna International) का 16 वां राष्ट्रीय सम्मेलन बीकानेर में आयोजित हुआ। यह संस्था सन् 1995 से कार्यरत है तथा 12 राज्यों में इसके 36 केन्द्र हैं एवं 2075 विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में इसके द्वारा करुणा क्लब चल रहे हैं। वार्षिक सम्मेलन में देश भर से आए कार्यकर्त्ताओं में विचार-विमर्श हुआ तथा निम्नांकित आचार्य हस्ती करुणा रत्न पुरस्कार प्रदान किए गए-

पुरस्कार **राशि एवं सम्मानित व्यक्ति**

1. **आचार्य हस्ती करुणा रत्न पुरस्कार-** 1 लाख रुपये, डॉ. गुलाब कोठारी, प्रधान संपादक, राजस्थान पत्रिका, जयपुर को
2. **आचार्य हस्ती करुणा इंस्टीट्यूशन पुरस्कार-** 50000/- विशाखा सोसायटी फॉर प्रोटेक्शन एण्ड केयर ऑफ एनिमल्स, विशाखापतनम्
3. **आचार्य हस्ती करुणा सेवा पुरस्कार-** 25000/- श्री रमेश पण्ड्या, जूनागढ़, गुजरात
4. **आचार्य हस्ती करुणा युवा पुरस्कार-** 25000/- श्री सुधीर लुणावत, बीकानेर
5. **आचार्य हस्ती करुणा वक्ता पुरस्कार-** 25000/- श्री ए.आर. शान्तिलाल नाहर, रिसोर्स पर्सन, चेन्नई
6. **आचार्य हस्ती करुणा लेखक पुरस्कार-** 25000/- श्री अजित जैन 'जलज', टीकमगढ़ (मध्यप्रदेश)
7. **आचार्य हस्ती करुणा अध्यापक पुरस्कार-** 25000/- श्रीमती पी. ग्नानेनसम, चेन्नई
8. **आचार्य हस्ती करुणा विद्यालय पुरस्कार-** 25000/- चिन्मय विद्यालय, विरुगम्बाक्कम, चेन्नई

ये सभी पुरस्कार श्री पी.एस. सुराणा, सुराणा एण्ड सुराणा इण्टरनेशनल एटोर्नी चेरिटेबल ट्रस्ट, चेन्नई द्वारा प्रतिवर्ष प्रदान किए जाते हैं। इसी अवसर पर करुणा अन्तरराष्ट्रीय द्वारा 20 विशिष्ट विद्यालयों को एवं 22 दयावान छात्रों को पुरस्कृत किया गया।

सम्मेलन में राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु आदि राज्यों से लगभग 700 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधिपति डॉ. विनीत जी कोठारी थे। चेयरमेन श्री दुलीचन्द जी जैन, अध्यक्ष- श्री कैलाशमल जी दुगड़, महामंत्री श्री सुरेश जी कांकरिया, बीकानेर केन्द्र के अध्यक्ष श्री इन्द्रचन्दजी दुगड़ आदि सहित अनेक गणमान्य अतिथियों ने विचार व्यक्त किए।

संघ-सेवा सोपान के अंतर्गत संघ एवं संघ से सम्बन्धित संस्थाओं के संचालन में निम्नानुसार सहयोग कर पुण्यार्जन करें

संघ-सेवा में योगदान

1. गजेन्द्र निधि/फाउण्डेशन ट्रस्टी-	1100000/- रुपये का अर्थ सहयोग।
2. संघ भूषण-	कम से कम तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष 251000/-
3. संघ प्रभावक-	कम से कम तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष 100000/-
4. संघ हितैषी-	कम से कम तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष 51000/-
5. संघ पोषक-	कम से कम तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष 21000/-
6. संघ सहयोगी-	कम से कम तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष 11000/-
7. संघ प्रोत्साहक-	कम से कम तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष 5000/-
8. अन्य सहयोग-	इच्छानुसार

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल को सहयोग

1. साहित्य निधि संरक्षक-	100000/- एक मुश्त
2. साहित्य निधि स्तम्भ-	51000/- एक मुश्त
3. साहित्य निधि पोषक-	21000/- एक मुश्त
4. साहित्य प्रकाशन हेतु-	इच्छानुसार
5. साहित्य सदस्यता-	4000/-रुपये
6. जिनवाणी स्तम्भ सदस्यता-	21000/- रुपये
7. जिनवाणी संरक्षक सदस्यता-	11000/- रुपये
8. जिनवाणी सदस्यता (20 वर्ष)-	1000/ रुपये

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ को सहयोग

1. स्वाध्याय निधि संरक्षक-	100000/- रुपये एक मुश्त

2. स्वाध्याय निधि स्तम्भ- 51000/- रुपये एक मुश्त
3. स्वाध्याय निधि पोषक- 21000/- रुपये एक मुश्त
4. वार्षिक सदस्यता- 2100/- रुपये
5. अन्य सहयोग- इच्छानुसार

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड हेतु

1. शिक्षा निधि संरक्षक- 100000/- रुपये एक मुश्त
2. शिक्षा निधि स्तम्भ- 51000/- रुपये एक मुश्त
3. शिक्षा निधि पोषक- 21000/- रुपये एक मुश्त
4. पाठ्यक्रम पुस्तक प्रकाशन सहयोग
5. वरीयता सूची में स्थान प्राप्त करने वाले परीक्षार्थियों को पदक
6. परीक्षार्थी पुरस्कार हेतु सहयोग
7. विशिष्ट वार्षिक सहयोग- 10000/- रुपये
8. संस्कार केन्द्र संचालन हेतु सहयोग
9. संस्कार केन्द्र पुरस्कार हेतु सहयोग

शरद्चन्द्रिका मोफतराज मुणोत श्री जैन रत्न वात्सल्य निधि हेतु

1. सदस्यता- 100000/- रुपये एक मुश्त
2. पारिवारिक सहयोग- 12000/- रुपये
3. छात्रवृत्ति- 6000/- रुपये प्रतिछात्र

सामायिक-स्वाध्याय भवन योजना हेतु सहयोग

1. बड़े स्थानक- प्रति स्थानक- 1100000, 500000, 251000, 100000 रुपये प्रतिवर्ष
2. छोटे स्थानक- प्रति स्थानक- 251000, 100000, 51000, 21000 प्रतिवर्ष

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना हेतु

छात्रवृत्ति- 12000/- रुपये प्रतिछात्र

संक्षिप्त-समाचार

देई (बूंदी)- यहाँ पर 12 दिसम्बर 2013 को नवनिर्मित **"उत्तम सामायिक-स्वाध्याय भवन"** का लोकार्पण समारोह सम्पन्न हुआ। समारोह की मुख्य अतिथि दानवीर भामाशाह

श्री प्रमोद जी महनोत की धर्मसहायिका श्रीमती राज जी महनोत थी। अध्यक्षता श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना ने की। इस अवसर पर श्राविका मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती पूर्णिमा जी लोढ़ा, संघ के संयुक्त महासचिव श्री मानेन्द्र जी ओस्तवाल, श्री विवेक जी महनोत-जयपुर, स्वाध्याय संघ के संयोजक श्री कुशलचन्द जी गोटेवाला, डॉ. प्रतापसिंह जी लोढ़ा, जयपुर आदि विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

खेरली (अलवर)- पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. एवं उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. के 51 वें दीक्षा-जयन्ती वर्ष के अवसर पर श्री जैनरत्न युवक परिषद् खेरली द्वारा पाँचवें स्वैच्छिक रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें 301 इकाई का रक्तदान हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि भा.ज.पा के प्रदेश मंत्री श्री सुनील जी कोठारी थे एवं अध्यक्षता अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के उपाध्यक्ष श्री अमिताभ जी हीरावत ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री महावीरप्रसादजी जैन-दिल्ली, श्री सुरेश जी जैन-खेरली उपस्थित थे। शिविर का आयोजन शाखा प्रमुख श्री विपिन जी जैन एवं शिविर संयोजक श्री मनीष जी जैन के सत्प्रयासों से सम्पन्न हुआ।

जोधपुर- परमपूज्य आचार्यभगवन्त श्री हस्तीमल जी म.सा. का 104 वां जन्मदिवस 14 जनवरी, 2014 को श्री जैन रत्न युवक परिषद्, जोधपुर द्वारा **अभयदान दिवस** के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया है। इस अवसर पर 104 बकरों को अभयदान (छुड़वाना) तथा गायों को चारा, कबूतरों को दाना देने का लक्ष्य रखा गया है।

-धीरज डोसी, संयोजक-जीवदया

मैसूर- युवा मुमुक्षु विशाल कटारिया एवं कुमारी पायल कटारिया सुपुत्र-सुपुत्री श्री प्रवीण कुमार जी-शांतादेवी कटारिया तथा युवा मुमुक्षु धीरजकुमार कोठारी सुपुत्र श्री नवलचंदजी-पुष्पादेवी जी कोठारी की जैन भागवती दीक्षा 09 फरवरी 2014 को मैसूर में आचार्य श्री रामलाल जी म.सा. के मुखारविन्द से सम्पन्न होगी।

बीकानेर- 'जिणधम्मो' पर आधारित खुली किताब परीक्षा प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्तर पुस्तिका जमा कराने की अंतिम तिथि 11 फरवरी, 2014 से बढ़ाकर 30 अप्रेल 2014 कर दी गई है। **सम्पर्क सूत्र-** श्री महेश नाहटा, परीक्षा संयोजक, फोनः 09406201351

जयपुर- जैनविद्या संस्थान, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड़, जयपुर द्वारा निम्न पुरस्कारों के लिए प्रविष्टियाँ आमन्त्रित हैं- **महावीर पुरस्कार वर्ष-2013** (31001/-रुपये), **स्वयंभू पुरस्कार वर्ष-2013** (21001/- रुपये), **ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार वर्ष-2013** (5001/- रुपये)। पुरस्कार की नियमावली

आवेदनपत्र व विस्तृत जानकारी www.award.jainapa.com पर उपलब्ध है।

-डॉ. कमलचन्द सोगाणी, संयोजक-0141-2385247

जयपुर- अपभ्रंश साहित्य अकादमी से राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा मान्यता प्राप्त 'पत्राचार प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' (1 जनवरी से 31 दिसम्बर 2014) एवं 'पत्राचार अपभ्रंश सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' (1 जनवरी से 31 दिसम्बर 2014) में प्रवेश हेतु आवेदन पत्र व नियमावली निम्न वेबसाइट से प्राप्त करें- www.pra.jainapa.com, www.apa.jainapa.com **सम्पर्क सूत्र-** निदेशक, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड़, जयपुर-302004 (राज.), फोनः 0141-2385247 *-डॉ. कमलचन्द सोगाणी, निदेशक*

जयपुर- जैनविद्या संस्थान, जयपुर द्वारा आयोजित 'पत्राचार जैनधर्म-दर्शन एवं संस्कृति सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' (1 जनवरी से 31 दिसम्बर 2014) में प्रवेश हेतु आवेदन पत्र व नियमावली वेबसाइट से प्राप्त करें- www.jvs.jainapa.com **सम्पर्क सूत्रः-** निदेशक, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड़, जयपुर-302004 (राज.), फोन- 0141-2385247

नई दिल्ली- आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में 16-17 नवम्बर 2013 को 'शाकाहार एवं व्यसनमुक्त जीवन शैली' विषय पर दो दिवसीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में कई प्रसिद्ध विद्वान् और गणमान्य चिकित्सक उपस्थित रहे।

मदनगंज- उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' के जन्म शताब्दी वर्ष के अन्तर्गत 13 वीं पुण्यतिथि के अवसर पर 21 से 25 दिसम्बर 2013 तक पंच दिवसीय महोत्सव में गुरु गुणगान, मानव सेवा, रक्तदान, दंतशिविर, एकासन, दया, सजोड़े जाप आदि के कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

बैंगलोर- जैन शक्ति फाउण्डेशन के प्रतिनिधिमण्डल के सत्प्रयासों से जैनों को राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक का दर्जा देने हेतु सरकार दृढ़ता से शीघ्र कार्यवाही करने के लिए कृतसंकल्प है। जैनों को राष्ट्रीय स्तर पर अल्प संख्यकों का दर्जा प्राप्त हो जाता है तो इससे आर्थिक रूप से कमजोर जैन समुदाय के लोग राष्ट्रीय स्तर पर लागू होने वाली परियोजनाओं से लाभान्वित हो सकेंगे। अल्पसंख्यक मंत्रालय के प्रधान सचिव ललित के. पंवार को आप इस सम्बन्ध में अपना ज्ञापन-पत्र प्रेषित करें। **पत्राचार का पता-** Ministry of Minority Affairs, Government of India, 11th Floor, Paryavaran Bhawan, CGO Complex, Lodhi Road, New Delhi-110003, Phone: 91-011-24364273, Fax: 91-011-23795021, Email- moma.newdelhi@hotmail.com

बधाई

जर्मन विद्वान् प्रो. बंशीधर भट्ट को सेठिया पुरस्कार

नोखा- श्रीमती धन्नीदेवी सेठिया धर्मपत्नी भैंरूदान सेठिया धार्मिक भवन ट्रस्ट, नोखा, बीकानेर द्वारा 22 दिसम्बर 2013 को सेठिया भवन, नोखा में आयोजित एक समारोह में जर्मन प्रवासी प्रो. बंधीधर भट्ट को उनके द्वारा प्रदत्त जैनविद्या के क्षेत्र में गवेषणापूर्ण योगदान के लिए ''श्री भैंरूदान सेठिया विद्वत्पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। श्री रूडी जांश्मा को भी इस अवसर पर जैनविद्या युवा शोध पुरस्कार से सम्मानित किया गया। समारोह की अध्यक्षता पद्मभूषण श्री डी.आर.मेहता ने की तथा मुख्य वक्तव्य डॉ. सुषमा जी सिंघवी ने दिया।

उदयपुर- श्रीमती रिंकू देवड़ा को जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर द्वारा ''हिन्दी जैन कथा साहित्य और पुष्करमुनि का कथा संसार'' विषय पर पीएच्.डी. की उपाधि प्रदान की गई है। शोधकार्य हेतु उन्होंने डॉ. राजकृष्ण दुग्गड़ के निर्देशन में अपना शोध कार्य सम्पन्न किया।

श्रद्धांजलि

बैंगलोर- धर्मसाधिका सुश्राविका श्रीमती हुलासबाईजी मकाणा धर्मपत्नी स्व. श्री

किशनलाल जी मकाणा का 89 वर्ष की सुदीर्घ वय में 07 दिसम्बर 2013 को संथारा सहित पंडितमरण हो गया। आप प्रतिदिन 8-10 सामायिक करती थीं। आपने विगत 60 वर्षों से रात्रि-चौविहार-त्याग, जमीकंद का त्याग, पाँचों तिथियों में हरी का त्याग ले रखा था।

जोधपुर- युवारत्न श्री आलोक जी डोसी का 09 दिसम्बर 2013 को असामयिक देहावसान हो गया। आप नियमित सामायिक-स्वाध्याय करने वाले चिन्तनशील युवा थे। अपने सम्पर्क में आने वाले युवारत्नों को आप संघ-सेवा से जुड़ने की प्रेरणा करते थे। संघ-समाज की धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों में आप सदैव सक्रिय रहे। आप गुप्त रूप से आर्थिक सहयोग करने को सदैव तत्पर रहते थे।

जयपुर- सिद्धान्तवादी, समाजसेवी एवं संघ के प्रति समर्पित सुश्रावक श्री नेमीचन्द ढड्ढा

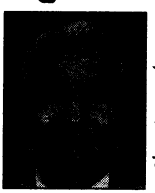

(सी.ए.) का 30 नवम्बर, 2013 को देवलोकगमन हो गया। प्रभावशाली व्यक्तित्व के साथ आप सरल, मधुर एवं वात्सल्यपूर्ण व्यवहार के धनी थे। आपका सिद्धान्त था कि अपनी बात को जरूर कहें, किन्तु क्रोध में नहीं कहकर धीमी आवाज में कहें। ईमानदारी और सत्यवादिता से आपके

क्लाइन्ट बहुत प्रभावित थे। आपने कई सामाजिक संस्थाओं और शिक्षण संस्थाओं में निःशुल्क सेवाएँ प्रदान कीं। रत्नसंघ की ओर से संचालित अनेक प्रवृत्तियों में आपका एवं आपके परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता रहा है।

जयपुर- अनन्य गुरुभक्त श्री गुलाबचन्दजी सुपुत्र स्व. श्री सरदारमलजी डागा का 16 दिसम्बर 2013 को स्वर्गारोहण हो गया। आप नियमित रूप से सामायिक, स्वाध्याय, दया, पौषध, संवर आदि करते रहते थे। पर्युषण पर्वाराधना में पूरे आठ दिन तक आप लाल भवन में रहकर धार्मिक आराधना करते थे। आप संत-सतियों की सेवा में सदैव अग्रणी रहते थे।

जयपुर- श्रद्धानिष्ठ श्रावकरत्न श्री देवेन्द्रजी सुपुत्र स्व. श्री सम्पतसिंहजी सुकलेचा का 15 दिसम्बर, 2013 को परलोकगमन हो गया। आपका जीवन सहज, सरल एवं सादगी से परिपूर्ण था। धर्मनिष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता, कर्मठ सेवाभावना, स्वधर्मी वात्सल्य, विनम्रता आदि अनेक गुणों से आपका जीवन ओतप्रोत था।

मदनगंज-किशनगढ़- धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री गुलाबचन्द जी चोरडिया का 83 वर्ष की आयु में 01 दिसम्बर, 2013 को स्वर्गवास हो गया। आपका जीवन सरलता, मधुरता, उदारता व सेवा भावना से ओत-प्रोत था। आपकी देव-गुरु-धर्म के प्रति सुदृढ़ आस्था थी।

चेन्नई- सुश्राविका श्रीमती भंवरीबाई जी धर्मपत्नी स्व. श्री गुलाबचन्द जी ललवानी का 77 वर्ष की उम्र में त्रिदिवसीय चौविहार संथारे सहित देवलोकगमन हो गया। आपका जीवन धार्मिक संस्कारों से युक्त था। आप अनेक थोकड़े, स्तवन, स्तुति आदि की जानकार थीं। चार वर्ष पर्युषण पर्व में आपने स्वाध्यायी के रूप में सेवा प्रदान की। चिंतादरी पेट (चेन्नई) महिला मण्डल की आप अध्यक्ष थीं। आपने 3 वर्षीतप, 11,9,8 आदि दिवसीय अनेक तपस्याएँ कीं। आप प्रतिदिन रात्रि-चौविहार-त्याग के साथ करीब 7-8 सामायिक करते हुए उभयकालीन प्रतिक्रमण करती थीं।

नागपुर- संघनिष्ठ सुश्रावक श्री प्यारेलाल जी मुणोत का स्वर्गारोहण 17 नवम्बर, 2013 को सागारी संथारा के साथ हो गया। आपका जीवन आचार्यश्री हस्तीमल जी म.सा. एवं आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. की प्रेरणा से त्याग व धर्म से ओत-प्रोत था। सामायिकव्रत आपकी दैनिक दिनचर्या का अभिन्न अंग था।

इन्दौर- व्रतनिष्ठ एवं त्यागनिष्ठ सुश्रावक श्री दशरथमल जी दूगड़ का 63 वर्ष की आयु में संथारे सहित समाधिमरण 18 नवम्बर, 2013 को हो गया। आप ''सादा जीवन उच्च विचार'' के धनी थे। बारहव्रत के साथ आपके रात्रि-भोजन, जमीकंद एवं विगय का त्याग था। अष्टमी-चतुर्दशी को रात्रि-चौविहार के प्रत्याख्यान रहते थे। आप प्रतिदिन सामायिक, स्वाध्याय, छोटे-बड़े प्रत्याख्यान व तप किया करते थे। आप श्रमण निर्ग्रंथों की विहार-सेवा आदि में तत्पर रहते थे।

तिरुवल्लुर (तमिलनाडु)- सुश्रावक श्री मिठालालजी सुपुत्र स्व. श्री सम्पतराज जी खारीवाल (बर-राजस्थान) का 46 वर्ष की वय में सागारी संथारे के साथ 16 नवम्बर, 2013 को स्वर्गवास हो गया। आप धर्मनिष्ठ, मिलनसार एवं मृदुभाषी थे। आपके नित्य सामायिक का नियम था। रात्रि-भोजन, जमीकन्द के त्याग थे। बड़ी स्नान एवं लिलोती की मर्यादा एवं चौथे व्रत का नियम था। आपने सुधर्म संघ की तमिलनाडु शाखा के मंत्री पद पर 3 साल तक एवं 12 साल तक पर्युषण में स्वाध्यायी सेवा दी थी।

जोधपुर- सेवाभावी सुश्रावक श्री समीर जी जैन (खींचन) का 85 वर्ष की उम्र में 25 दिसम्बर 2013 को स्वर्गवास हो गया। आपका जीवन सरल, धर्ममय और संयमित था। आप स्वाध्यायशील सुश्रावक श्री रेणुमल जी जैन के अनुज भ्राता थे।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जिनवाणी-परिवार तथा अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

आवश्यकता

श्री जैन रत्न जवाहरलाल बाफणा उच्च प्राथमिक कन्या पाठशाला, भोपालगढ़, जोधपुर (राज.) में बी.ए., बी.एड. प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिका की आवश्यकता है, उचित वेतन देय होगा। **सम्पर्क सूत्रः-** सोहनलाल बोथरा, 02920-240190, 9414601024

सन् 2014 हेतु शुभकामनाएँ

जिनवाणी पत्रिका के समस्त पाठकों एवं लेखकों को वर्ष 2014 हेतु हार्दिक मंगल कामनाएँ। जिनवाणी पत्रिका ने आपके सहयोग से 71 वर्ष पूर्ण कर 72 वें वर्ष में प्रवेश कर लिया है। आपका प्रभु जिनेश्वर की वाणी 'जिनवाणी' की भांति 'जिनवाणी' पत्रिका के प्रति जो अनुराग है, वह सतत अभिवृद्ध होता रहे।-**सम्पादक**

साभार-प्राप्ति-स्वीकार

4000/- मंडल के सत्साहित्य की आजीवन-सदस्यता हेतु प्रत्येक

766 Shri Ravindra Kumarji Mehta, Jaipur (Rajasthan)

1000/- जिनवाणी पत्रिका की 20 वर्षीय आजीवन-सदस्यता हेतु प्रत्येक

क्रम संख्या 15195 से 15204 तक 10 सदस्य बने।

जिनवाणी हेतु साभार प्राप्त

11000/- श्रीमती मीनाजी बैद, जयपुर, श्री पूनमचन्दजी बैद का 25 नवम्बर, 2013 को स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में।

5101/- श्री जयदीपजी ढड्ढा, जयपुर, श्रीमान् नेमीचन्दजी ढड्ढा का 30 नवम्बर, 2013 को स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में।

5000/- श्री सुरेन्द्रजी लुंकड, कोटा, स्व. श्री बंशीलालजी की सुपौत्री एवं श्रीमती आशाजी सुरेन्द्रजी लुंकड की सुपुत्री सौ.कां. प्रियंकाजी का शुभविवाह 4 दिसम्बर 2013 को सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में।

2100/- श्री गौतमचन्दजी, सुरेशचन्दजी, ज्ञानचन्दजी बरड़िया (पाली वाले), टी नगर-चेन्नई, दीक्षा-दिवस के उपलक्ष्य में।

2100/- श्री चम्पालालजी, मीठालालजी, शांतिलालजी, महावीरचन्दजी, चैनराजजी, जम्बूकुमारजी एवं गौतमचन्दजी मकाणा, बैंगलुरु, सुश्राविका श्रीमती हुलासबाईजी धर्मपत्नी स्व. श्री किशनलालजी मकाणा का 07 दिसम्बर, 2013 को संथारे सहित देवलोक गमन हो जाने पर पुण्य स्मृति में।

2100/- श्री जैन सभा, बलरामपुर द्वारा भेंट।

2100/- श्री पंकज जी, संतोषचन्द जी रांका, मुम्बई, श्रीमती सुशीलाबाईजी-संतोषचंदजी रांका की स्मृति में।

2100/- श्री रूपकुमारजी, मोहनराजजी, मदनराजजी, धर्मेशकुमारजी चौपड़ा (कवास वाले), पाली, चि. प्रिंस चौपड़ा (सुपुत्र श्री रूपकुमार जी चौपड़ा) संग पूर्वी (सुपुत्री श्री रविन्द्रकुमारजी सालेचा) के शुभविवाह के उपलक्ष्य में।

2100/- श्री उत्तमचन्दजी, अमरचन्दजी डागा, जयपुर, पूज्य पिताश्री गुलाबचन्दजी डागा सुपुत्र स्व. श्री सरदारमलजी डागा का 16 दिसम्बर, 2013 को स्वर्गवास हो जाने पर पुण्य स्मृति में।

1100/- श्री देवेन्द्रनाथ जी-श्रीमती कमलाजी मोदी, श्री लोकेन्द्रनाथजी-ऋतुजी, लोरी मोदी, जोधपुर, कीर्तिशेष श्री हुकमनाथ जी मोदी-श्रीमती कृष्णा जी मोदी की पुण्यतिथि पर भावांजलि स्वरूप।

1100/- श्री राजेन्द्रनाथजी-शोभाजी, भूपेन्द्रनाथजी-संगीताजी, शैलेन्द्रजी, सौरभजी, सज़ल, स्वाति मोदी, जोधपुर, स्मृतिशेष श्री विश्वम्भरनाथ जी मोदी एवं सरदारकंवरजी मोदी की

पुण्यतिथियों पर स्मरणांजलि स्वरूप।

1100/- श्रीमती सौभाग्यकंवर जी, महेन्द्र जी, ऋषभजी गुलेच्छा, ब्यावर द्वारा सप्रेम।

1100/- श्री सुनील कुमारजी, अनिल कुमारजी मोदी, किशनगढ़, सुश्रावक श्री तेजमलजी मोदी का 24 नवम्बर 2013 को स्वर्गवास हो जाने पर पुण्य स्मृति में।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर को साभार प्राप्त

100000/ श्री सम्पतराज जी चौधरी, दिल्ली, संघ सहायतार्थ।

14100/- श्री नवतरनमलजी गादिया, पीपाड़शहर, जीवदया हेतु।

11000/- वीरमाता श्रीमती शंकुतलादेवीजी, मदनमोहनजी, अजयजी, विजयजी, संजयजी जैन, मण्डावर, संघ सहायतार्थ।

10000/- श्रीमती आयचुकीदेवीजी जैन, पीपाड़शहर, जीवदया हेतु।

10000/- श्रीमती दिलीपकुमारजी गादिया, पीपाड़शहर, जीवदया हेतु।

9070/- श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, मण्डावर, संघ सहायतार्थ।

8500/- श्री एम.चन्द्रराजजी, दीपकजी, नीतेशजी ओस्तवाल, कृष्णागिरी, शिक्षा सहयोग हेतु।

8500/- श्री प्रदीपजी, यशवन्तजी, मेहुलजी ओस्तवाल, कृष्णागिरी, शिक्षा सहयोग हेतु।

5000/- श्री सुधीर जी ओस्तवाल, श्रीमती विमलाजी ओस्तवाल, चेन्नई, संघ सहायतार्थ।

2000/- श्री अशोकजी मेहता, जोधपुर, साहित्य प्रकाशन हेतु।

1500/- श्रीमती चन्द्रकलाजी धर्मपत्नी श्री इन्द्रचन्दजी जैन, जोधपुर, संघ सहायता एवं जीवदया हेतु।

1100/- श्री संजयजी पारसमलजी जैन, जोधपुर, जीव दया हेतु।

1100/- श्री मुकनचन्द जी, कमलेशकुमारजी मेहता, इन्दौर, संघ सहायतार्थ।

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर को साभार प्राप्त

9050/- बलरामपुर संघ, पर्युषण सहयोग।

3100/- भादसोड़ा संघ, पर्युषण सहयोग।

2100/- कल्याणमल प्रकाशमल चोरडिया ट्रस्ट, चेन्नई द्वारा भेंट।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल में अर्थसहयोग

2100/- श्री उत्तमचन्दजी, अमरचन्दजी डागा, जयपुर, पूज्य पिताश्री गुलाबचन्दजी डागा सुपुत्र स्व. श्री सरदारमलजी डागा का 16 दिसम्बर, 2013 को स्वर्गवास हो जाने पर पुण्य स्मृति में।

आगामी पर्व

पौष शुक्ला 14, मंगलवार	14.01.2014	चतुर्दशी, आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. का 104 वां जन्म-दिवस।
पौष शुक्ला 14, बुधवार	15.01.2014	चतुर्दशी, पक्खी
माघ कृष्णा 4, सोमवार	20.01.2014	उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. का 80 वां जन्म-दिवस।

माघ कृष्णा 8, शुक्रवार	24.01.2014	अष्टमी
माघ कृष्णा 14, बुधवार	29.01.2014	चतुर्दशी
माघ कृष्णा 30, गुरुवार	30.01.2014	पक्खी
माघ शुक्ला 8, शुक्रवार	07.02.2014	अष्टमी
माघ शुक्ला 14, गुरुवार	13.02.2014	चतुर्दशी
माघ शुक्ला 15, शुक्रवार	14.02.2014	पक्खी
फाल्गुन कृष्णा 8, रविवार	23.02.2014	अष्टमी

प्रदर्शन छोड़ें, स्वयं को सुधारें

श्री राजेन्द्र सिंह चौधरी

आज व्यक्ति अपने ऊपर अनेक प्रकार के मिथ्या आडम्बर लाद रहा है, प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ रही है तथा भौतिक सुख के साधनों की दृष्टि से हम अधिक सम्पन्न होते जा रहे हैं। परन्तु व्यक्ति मन की मलिनता, कुटिलता के कारण अनावश्यक मानसिक विकारों का शिकार बनता जा रहा है, जिससे जीवन की सुख-शान्ति व्यक्ति से दूर होती जा रही है।

इस आधुनिक जीवन में अहंभाव का प्रभाव बहुत बढ़ता जा रहा है। वाणी का संयम अपनी सीमाएँ छोड़ रहा है तथा व्यक्ति अपने को ही सर्वोच्च, श्रेष्ठ, शक्तिमान तथा दूसरों को निम्न, दुर्बल एवं हीन समझ रहा है, जिससे परिवार में आपसी मनमुटाव बढ़ रहा है, समाज टुकड़ों में बंटता जा रहा है, सांप्रदायिक दंगे हो रहे हैं, राजनैतिकों का नैतिक पतन होता जा रहा है। इनकी जड़ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमारे मन, विचार एवं सोच में है।

ग्रंथियों से उत्पन्न दुःख के कारण को हम अंतर्मन में न खोज कर सदा बाह्य वातावरण में खोजते रहते हैं। स्नान करके व्यक्ति अपने बाह्य शरीर को तो साफ कर सकता है, किन्तु इससे उसका मन पवित्र नहीं हो सकता। मन की मलिनता शारीरिक एवं मानसिक रोगों को पनपाती है। शारीरिक दृष्टि से घातक बीमारियाँ हो जाती हैं तथा मानसिक दृष्टि से वह आत्मग्लानि, चिन्ता, भय, निराशा का अनुभव करता है।

भगवान महावीर ने इस तरह के होने वाले वातावरण का पूर्वानुमान लगा लिया था, इसीलिए उन्होंने चित्तशुद्धि और विचारों के समीकरण के लिए अहिंसा के सिद्धांतों के पालन की मानसिकता पर अधिक जोर दिया। उन्होंने अपने उपदेशों से चित्त में अशुद्ध विचार, अहंकार और हिंसा को बढ़ाने वाले सूक्ष्म विचारों को दूर करने हेतु मार्गदर्शन किया।

-42, प्रेम नगर, खेमा का कुआ, पाल रोड़, जोधपुर (राज.)

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

क्रोध पर विजय प्राप्त करनी हो तो क्षमा धारण करें।
– आचार्यश्री हस्ती

जोधपुर में प्लॉट, मकान, जमीन, फार्म हाउस खरीदने व बेचने हेतु सम्पर्क करें।

पद्मावती

डेवलपर्स एण्ड प्रोपर्टीज

महावीर बोथरा
09828582391

नरेश बोथरा
09414100257

292, सनसिटी हॉस्पिटल के पीछे, पावटा, जोधपुर 342001 (राज.)
फोन नं. : 0291-2556767

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

अंतर में सच्चाई चाहिए और व्यवहार में सफाई चाहिए, वही प्राणी संसार में अपना आत्म हित कर जगत के सामने आदर्श रख सकता है ।

- आचार्य श्री हीरा

C/o CHANANMUL UMEDRAJ
BAGHMAR MOTOR FINANCE
S. SAMPATRAJ FINANCIERS
S. RAJAN FINANCIERS

 # 218, Ashoka Road, Lashkar Mohalla,
Mysore-570001 (Karanataka)

With Best Compliments from :
C. Sohanlal Budhraj Sampathraj Rajan
Abhishek, Rohith, Saurav, Akhilesh Baghmar
Tel. : 821-4265431, 2446407 (O)
Mo. : 9845126407 (B), 9845580407 (S), 9845113334 (R)

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

सामायिक वह महती साधना है, जिसके द्वारा जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्म-मल को नष्ट किया जा सकता है ।

BALAJI AUTOS

(Mahindra & Mahindra Dealers)
618, 619, Old No. 224, C.T.H. Road
Padi, Mannurpet, Chennai - 600050
Phone : 044-26245855/56

BALAJI HONDA

(Honda Two Wheelers Dealers)
570, T.H. Road, Old Washermenpet, Chennai - 600021
Phone : 044-45985577/88
Mobile : 9940051841, 9444068666

BALAJI MOTORS

(Royal Enfield Dealers)
138, T.H. Road, Tondiarpet, Chennai - 600081
Maturachaiya Shelters,
Annanagar
Mobile : 9884219949

BHAGWAN CARS

Chennai - 600053
Phone : 044-26243455/66

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

With Best Compliments from :

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

Parasmal Suresh Kumar Kothari

Dhapi Nivas, 23, Vadamalai Street,
Sowcarpet, Chennai - 600079
Phone : 044-25294466/25292727

Gurudev

SURANA™
yes, the best TMT RE-BARS

DRI Plant

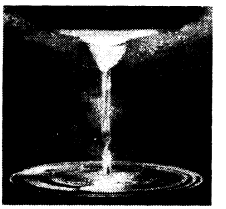

Electric Arc Furnace

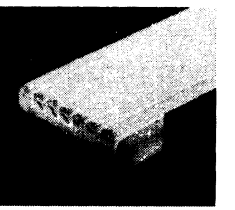

Billets

Rolling Mill

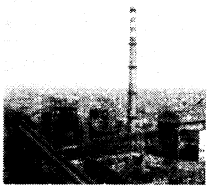

Captive Power Plant

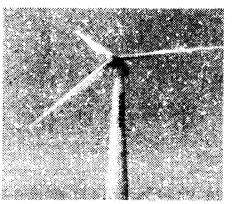

Windmill

With best wishes from

ISO 9001-2008

SURANA INDUSTRIES LIMITED

INTEGRATED STEEL PLANT

MANUFACTURE OF TMT BARS AND ALL KIND OF ALLOY STEEL

29, Whites Road, II Floor, Royapettah, Chennai 600 014/ Ph : 044-28525127 (3 lines) 28525596. Fax: 044-28521143

Email: steelmktg@suranaind.com / www.surana.org.in

STEEL I POWER I MINING

।। श्री महावीराय नमः ।।

हस्ती-हीरा जय जय ! हीरा-मान जय जय !

छोटा सा नियम धोवन का।
लाभ बड़ा इसके पालन का।।

अखण्ड बाल ब्रह्मचारी चारित्र चूड़ामणि, भक्तों के भगवान् 1008
श्री हस्तीमल जी म.सा. के चरणों में हृदय की असीम आस्था से समर्पण
उनके अनमोल खजाने के हीरे-मोती जन-जन के तारणहार
पूज्य आचार्य प्रवर 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा.,
पण्डित रत्न उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा.
एवं समस्त
रत्नाधिक साधु साध्वी मण्डल
के चरण कमलों में भावभरा कोटिशः वन्दन एवं समर्पण...

OUR HUMBLE SALUTATIONS TO THE MOST NOBLE SOULS

PRITHIVIRAJ PREM KUMAR KAVAD
690, Trunk Road, Poonamallee, Chennai - 600 056
Ph. 044-26272196 Mob. : 93810-07273

MANGILAL HARISH KUMAR KAVAD
GURU HASTI THANGA MAALIGAI
(JEWELLERS & BANKERS)
5, Car Street, Poonamallee, Chennai-600 056
Ph. : 044-26272609 Mob. : 95-00-11-44-55

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

प्यास बुझाये, कर्म कटाये
फिर क्यों न अपनायें
धोवन पानी

Narendra Hirawat & Co.

Flat No. 1, Building No. 2, Navjeevan Society,
Senapati Bapat Marg, Matunga (West), MUMBAI-400 016

Trin-Trin

Matunga Office : 022-24370713, 24380713, 66669707
Opera House Office : 022-23669818
Mobile : 09821040899

गजेन्द्र निधि द्वारा संचालित

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद्

आदरणीय रत्नबंधुवर,

रत्न संघ के अष्टम पट्टधर परम पूज्य आचार्य भगवंत 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा., पंडितरत्न उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. एवं संत-सतीमण्डल की असीम कृपा तथा रत्नसंघ के संघनिष्ठ गुरु भक्तों के पूर्ण सहयोग से गत सात वर्षों से मेधावी छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक उन्नति एवं नैतिक व आध्यात्मिक जीवन में अभिवृद्धि करने के लिए छात्रवृत्ति योजना चल रही है। संघ द्वारा इस योजना का विस्तार कर दिया गया है।

निवेदन है कि अपने परिवार में आई खुशियों को मूर्त रूप देने के लिए छात्रवृत्ति योजना में रुपये 3000/-, 6000/- व 9000/- का अर्थ सहयोग करके दिवस विशेषों को चिरस्थायी बनायें एवं पुण्य कमायें।

आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. एवं पण्डितरत्न उपाध्याय श्री मानचन्द्र जी म.सा. के दीक्षा अर्द्धशती वर्ष के शुभ अवसर पर छात्रवृत्ति योजना में 50,000/- रुपये या एक छात्र के लिए 12000/- रुपये अथवा उनके गुणक में छात्रवृत्ति राशि का अतिशीघ्र अर्थ सहयोग करावें।

ज्ञान का एक दीया जलाइये, सहयोग के लिए आगे आइए
दीक्षा अर्द्धशती वर्ष में लाभ उठाकर आनन्द पाइये

इस योजना में जो गुरुभक्त अर्थ सहयोग करना चाहते हैं, वे चैक, ड्राफ्ट या नकद राशि जमा करा सकते हैं या भेज सकते हैं। कोष का खाता विवरण इस प्रकार है-

A/c Name- Gajendra Nidhi Acharya Hasti Scholarship Fund
A/c No. 168010100120722
Bank Name & Address- AXIS Bank LTD. Anna Salai, Chennai(T.N.) IFSC Code- UTIB0000168
PAN No.- AAATG1995J
Note- Donation to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of Income Tax Act 1961.

सहयोग के लिए चैक या ड्राफ्ट कार्यालय के इस पते पर भेजें-

B.Budhmal Bohra
No.-53, Erullappan street, Sowcarpet, Chennai-600079 (T.N.), Telefax No.- 044-42728476

अधिक जानकारी एवं सहयोग करने के लिए सम्पर्क करें-

Name	Place	Contact No.	Name	Place	Contact No.
Ashok Kavad	Chennai	9381041097	Sumtichand Mehta	Pipar	9414462729
Budhmal Bohra	Chennai	9444235065	Manoj Kankaria	Jodhpur	9414563597
Praveen Karnaavat	Mumbai	9821055932	Kushalchand Jain	Sawai Madhopur	9460441570
Mahendra Bafna	Jalgaon	9422773411	Rajkumar Golecha	Pali	9829020742
Ravindra Jain	Sawai Madhopur	9413401835	Harish Kavad	Chennai	9500114455
Suresh Chordia	Chennai	9444028841	Jitendra Daga	Jaipur	9829011589
Vikram Bagmar	Chennai	9841090292	Sheryansh Mehta	Jodhpur	9799506999

जय गुरु हस्ती

जय गुरु हीरा जय गुरु मान

अगर व्यक्ति प्रभु के मार्ग पर चले तो कहीं भी अशान्ति नहीं हो सकती।
- आचार्य श्री हीरा

सांखला परिवार की ओर से निवेदन

हम :

चौबीसों तीर्थंकरों के चरण
कमलों पर मस्तक रखते हैं
और
विनम्रता तथा गौरव के साथ
जाहिर करते हैं कि
"जिनवाणी" के
उत्कर्षदायी तथा पुण्यात्मक कार्यों में
हमारा सहर्ष
सदैव सहकार रहेगा।

मदन मोहन सांखला,
सौ. हेमलता मदन सांखला
मेहुल मदन सांखला
सौ. प्रणिता मेहुल सांखला और
बेबी बुणम मेहुल सांखला

MAXHEAL Group of Companies

Jai Guru Heera Jai Guru Hasti Jai Guru Maan

शाश्वत सुख के लिए प्रतिपल प्रयत्न करने वाले जीव मुमुक्षु कहलाते हैं।
ये जीव साधक भी हो सकते है और श्रावक भी ।
- आचार्य श्री हीरा

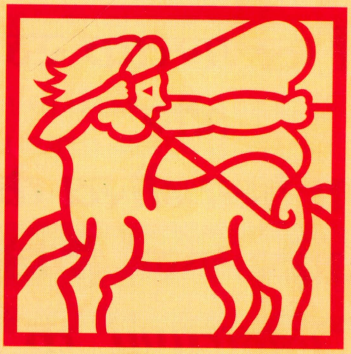

BHANSALI GROUP

Dhanpatraj V.Bhansali

BHANSALI DEVELOPERS

Sharda Bhawan, 2nd Floor, Nandapatkar Road,
Vile Parle (E), Mumbai - 400 057
Tel. : (O) 26185801 / 32940462
E-MAIL : bhansalidevelopers@yahoo.com

|| जय गुरु हीरा || || जय गुरु हस्ती || || जय गुरु मान ||

दिवस को दिव्य बनाने

भोर को भव्य बनाने

प्रभात को प्रभाती बनाने

दिन को दिप्तिमान बनाने

तारीख को तेजस्वी बनाने

के लिए

गुरु हस्ती गुरु हीरा गुरु मान के वचनों को

हर दिन एक प्रेरणा और नियम के साथ ग्रहण करने के लिए

आपके घर - प्रतिष्ठान की शोभा

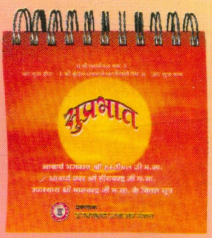

सुप्रभात

अनमोल मानव जन्म को सार्थक
करने के लिए विचार शक्ति
और नियम शक्ति का
अद्‌भुत, अनमोल संकलन

प्रकाशक : सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, दु.नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर

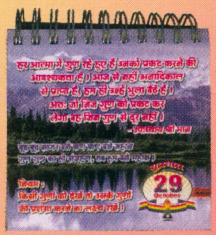

फोन : 0141-2575997, फैक्स : 0141-2570753

विज्ञापन सौजन्य :- श्री एस. उम्मेदराज जैन (हुण्डीवाल), चैन्नई

आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-21/2012-14
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 जनवरी, 2014
वर्ष : 72 ★ अंक : 01 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 जनवरी, 2014★ पौष, 2070

Kalpataru

AURA

• Awarded Best Architecture (Multiple Units) at Asia Pacific Property Awards 2010 • A complex of multi-storeyed buildings • Luxurious 2 BHK & E3 homes • Two clubhouses with gymnasium, squash, half-basketball and tennis courts • Mini-theatre • Yoga room • Swimming pool • Multi-functional room • Spa • Landscaped garden and children's play area • Safety and security features

KALPA-TARU®

Site Address: LBS Marg, Ghatkopar (West), Mumbai - 400 086.
Head Office: 101, Kalpataru Synergy, Opp. Grand Hyatt, Santacruz (East), Mumbai - 400 055.
Tel.: 022-3064 3065 • **Fax:** 022-3064 3131
Email: sales@kalpataru.com • **Visit:** www.kalpataru.com

All specifications, designs, facilities, dimensions, etc. are subject to the approval of the respective authorities and the developers reserve the right to change the specifications or features without any notice or obligation. Images are for representative purposes only. All project elevations are an artistic design. Conditions apply.

Kalpataru Limited is proposing, subject to market conditions and other considerations, to make a public issue of securities and has filed a Draft Red Herring Prospectus ("DRHP") with the Securities and Exchange Board of India (SEBI). The DRHP is available on the website of SEBI at www.sebi.gov.in and the respective websites of the Book Running Lead Managers at www.morganstanley.com/indiaofferdocuments, www.online.citibank.co.in/rhtm/citigroupglobalscreen1.htm, www.csinga.com, www.icicisecurities.com, www.nomura.com/asia/services/capital_raising/equity.shtml, www.idfccapital.com. Investors should note that investment in equity shares involves a high degree of risk and for details relating to the same, see 'Risk Factors' in the aforementioned offer documents. This communication is not for publication or distribution to persons in the United States, and is not an offer for sale within the United States of any equity shares or any other security of Kalpataru Limited. Securities of Kalpataru Limited, including its equity shares, may not be offered or sold in the United States absent registration under U.S. securities laws or unless exempt from registration under such laws.

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – विनय चन्द डागा द्वारा दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जौहरी बाजार, जयपुर से मुद्रित व सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर – 302003 से प्रकाशित । सम्पादक – डॉ. धर्मचन्द जैन